RNI TITLE CODE : UTTHINO5039

मूल्य 20 रुपए

कविकुंभ

संयुक्तांक

वर्ष 01 ● अंक 05-06 ● अप्रैल-मई 2017

दिविक रमेश का शब्द-समय

पागल होने से अच्छा है लिखते-लिखते मर जाना

— राम सेंगर

बड़ों की चूक पर नचिकेता के दो टूक

गंगा तीरे संगीत साधना की सुरम्य, अद्भुत तपोभूमि

देवी संगीत आश्रम, ऋषिकेश

RNI TITLE CODE : UTTHINO5039

मूल्य 20 रुपए

कविकुंभ

वर्ष 01 ● संयुक्तांक 05-06 ● अप्रैल-मई 2017

दिल्ली ● हरियाणा ● मप्र ● छत्तीसगढ़ ● राजस्थान ● उप्र ● उत्तराखंड ● बिहार ● झारखंड ● प.बंगाल ● पंजाब ● हिमाचल ● जम्मू-कश्मीर ● महाराष्ट्र ● गुजरात

शब्द-संपादकीय

यह तो बहुत पहले से जरूरी था

यह अशेष कविता-समय का आत्म-संघर्ष है कि एक-अकेले 'कविकुंभ' का! या इस राह की अन्यान्य समस्त साहित्यिक पत्रिकाओं, या कहिए कि पूरी रचनात्मक पत्रकारिता और उसके सृजन-सरोकारों का ! ऐसे अनेकशः प्रश्न असहज करते हैं। आज हम जिस तरह घिरे हैं, व्यावहारिक जीवन में तब भी तो कोई राह आसान नहीं थी। अपनी तरह की उलझनें सूर्यकांत त्रिपाठी निराला और मुंशी प्रेमचंद के समय में भी पूरे रास्ते कांटों की तरह बिछी रही हैं। और आज भी। बात बाजार के सिरे से करें या टेक्नोलॉजी के बहाने रीझें-खीझें। तो फिर करें क्या? बड़ा सरल-सा उत्तर है। शब्दों की हिफाजत के लिए जहां तक हो सके, हर असंभव पर पार पाने का समवेत प्रयास करते रहना है। हमारे पुरखों ने किया था। आने वाली पीढ़ियों के सामने भी साधन और साध्य, सही और गलत की चुनौतियां उपस्थित रहेंगी।

महादेवी वर्मा, शिवमंगल सुमन के लिए, मंच तब भी कुछ कम बिगड़े हुए नहीं थे, न सर्वेश्वर दयाल सक्सेना, रघुवीर सहाय के लिए 'धर्मयुग', 'साप्ताहिक हिंदुस्तान' जैसी पत्रिकाएं अपने साहित्यिक स्वभाव में अपेक्षाभर कत्तई इकहरी रही थीं। और गहरे उतरें। कविता में बात मुक्तिबोध की हो या अशोक वाजपेयी की, अथवा आलोचना में पं.रामचंद्र शुक्ल, और अब तक के नामवर सिंह की, दिशा-दिशा दोराहे, तिराहे प्रश्न-बिद्ध करते रहे हैं। आलोचना की आलोचना न तब कम होती थी, न आज हो रही है। नाना प्रकार के द्वंद्व में रहते हुए निर्द्वंद्व, धुन का पक्का होना ही मंजिल को आसान करता है। ऐसे संकल्प हमे राहें आसान करने की जिद और शक्ति देते हैं।

'चांद' और 'सरस्वती' के इतिहास पर जाएं। प्रसाद, पंत, महादेवी के समय की निराला की भौतिक असंगतियों को जानें। लगता ही नहीं कि कहीं कुछ बदला है। बस समय और चेहरे बदल गए हैं। जो जूझते हुए हाशिए पर हैं, जो जोड़-जुटाकर सिरहाने हैं, दिख तो रहा है। महावीर प्रसाद द्विवेदी ने 'सरस्वती' से हिंदी साहित्य को चाहे जितना भरा-पूरा, जन का मन तो 'चांद' के जब्तशुदा अंक पढ़ने को ही ज्यादा ललचाता है। सबके पीछे एक सच है। अपने-अपने सरोकार और संघर्ष की दशा-दिशा का अंतर। संघर्ष जितना दुस्सह, छाप उतनी अमिट। यह एक सूत्र कविता, किताब, पत्रिका, मंच, कवि-आलोचक, पाठक, श्रोता, सबकी दृष्टि से मानो हर रहस्य खोल देता है। सब साफ-साफ दिखता है कि वे ही प्रश्न हमारे आसपास अर्थ बदलकर आज भी मंडरा रहे हैं। साहित्यिक पुरस्कारों की ओट से रिश्ते-नातों में कैसे-कैसे छल हो रहे हैं और कितने रंग, कितने प्रकार से सृजन के नाम पर कचरे के अंबार लगते जा रहे हैं। देखते रहिए कि इस तरह आखिर कब तक बाजार हांकता रहता है।

कविता और जीवन, दोनो एक-दूसरे के लिए हैं तो दोनो का आत्म-संघर्ष एक-सा होगा ही। वह दिखे, न दिखे। कोई कहे, न कहे। केवल 'कविकुंभ' की मुश्किलों का रोना क्यों रोएं। इस राह पर कोई भी तो चंगा और भरपूर, सर्वमान्य और संपूर्ण सुपठनीय, निरापद और निश्चिंत नहीं है। हम 'कविकुंभ' को लेकर कवि-साहित्यकारों, सुधी पाठकों, मंचों, साहित्यिक समारोहों तक जा रहे हैं। इस उद्देश्य से कि कचरे का अंबार कुछ तो छंटे। और कुछ न सही, तो किंचित नीम खामोशी भर कुनमुनाए। हमारा मामूली-सा अनुभव आश्चर्यजनक उम्मीदों से सामना करा रहा है। सबकी चिंता और संभावना का रंग एक है। साहित्यकार और सुधी, दोनो 'कविकुंभ' को गंभीरता से ले रहे हैं, सतत चलते रहने का अपेक्षाधिक साहस, साथ दे रहे हैं। दस्तक के लिए अभी इतना पर्याप्त है। इस साक्ष्य के तौर पर कि हम जो कर रहे हैं, बहुत पहले से जरूरी था।

– रंजीता सिंह

भाषा : हिंदी आवधिकता : मासिक

संपादक
रंजीता सिंह

प्रबंध संपादक
जयप्रकाश त्रिपाठी

सृजन-समन्वयक
डॉ. कृष्ण कुमार,
डॉ. चंद्रकुमार वरठे,
लोकेश श्रीवास्तव,
नरसिंह बहादुर 'चंद',
नितिन सबरंग,
डॉ. राम गरीब पांडेय 'विकल',
जय चक्रवर्ती

पृष्ठ-सज्जा : भगत सिंह रावत

'कविकुंभ' से संबंधित विवाद का न्याय-क्षेत्र देहरादून। 'कविकुंभ' में प्रकाशित रचनाओं से संपादक की व्यक्तिगत सहमति आवश्यक नहीं। प्रकाशित रचनाओं के उपयोग से पहले संपादक, लेखक की पूर्व सहमति आवश्यक होगी।

ऑन लाइन रचनाएं भेजने का पता :
kavikumbh@gmail.com,

एस-172, स्कूल ब्लॉक,
शकरपुर, दिल्ली-110092.

फोन : 7250704688 /
7409969078 / 8958006501

मुद्रक, प्रकाशक, *संपादक-रंजीता सिंह द्वारा शिवगंगा प्रिंटिंग प्रेस, 20/1, नेताजी की गली, निकट तिलक रोड, देहरादून से मुद्रित तथा 50, आकाशदीप कॉलोनी, चकराता रोड, देहरादून (उत्तराखंड) 248001 से प्रकाशित.

शब्दानुक्रम

दिविक रमेश का शब्द-समय 8

पागल होने से अच्छा लिखते-लिखते मर जाना —राम सेंगर 25

राजधानी में कवि

बड़ों की चूक पर नचिकेता का दो टूक 16

हिंदीतर प्रदेश में एक अनूठा काव्य-संकल्प 37

मंच के प्रपंच में कविता
–प्रफुल्ल कोलख्यान, भारतेंदु मिश्र, यश मालवीय, ज्ञानचंद मर्मज्ञ, सेवाराम त्रिपाठी, शैलेंद्र शर्मा, हरी सिंह आदि 62

कविता बोलती है
–संजय चतुर्वेदी के शब्द 61

वेकुंभ उत्सव 50

शब्द-सुमन में बालस्वरूप राही, जहीर कुरैशी, डॉ. मधुसूदन साहा, डॉ. कृष्ण कुमार, कुंअर बेचैन, विनय मिश्र, लक्ष्मीशंकर वाजपेयी, नरेश शांडिल्य, देवाशीष आर्य आदि 35

शब्दशः में नए शब्द का जन्म - डॉ. चंद्र कुमार वरठे 76

जयंती

केदारनाथ अग्रवाल
(01 अप्रैल)

निर्मल वर्मा
(3 अप्रैल)

मन्नू भंडारी
(3 अप्रैल)

माखनलाल चतुर्वेदी
(4 अप्रैल)

राहुल सांकृत्यायन
(9 अप्रैल)

गुलशन बावरा
(12 अप्रैल)

पद्मा सचदेव
(17 अप्रैल)

अयोध्यासिंह उपाध्याय 'हरिऔध'
(15 अप्रैल)

बशीर बद्र
(30 अप्रैल)

नामवर सिंह
(01 मई)

बुद्धिनाथ मिश्र
(01 मई)

अग्निशेखर
(03 मई)

देवी नागरानी
(11 मई)

मंगलेश डबराल
(16 मई)

शानी
(16 मई)

सुमित्रानंदन पंत
(20 मई)

शरद जोशी
(21 मई)

डॉ. पदुमलाल पुन्नालाल बख्शी
(27 मई)

शेरजंग गर्ग
(29 मई)

हुल्लड़ मुरादाबादी
(29 मई)

पुण्य-तिथि

सच्चिदानंद हीरानंद वात्स्यायन
अज्ञेय (4 अप्रैल)

फणीश्वर नाथ 'रेणु'
(11 अप्रैल)

विष्णु प्रभाकर
(11 अप्रैल)

रामावतार त्यागी
(12 अप्रैल)

बाबू गुलाबराय एमए
(13 अप्रैल)

गोपाल सिंह नेपाली
(17 अप्रैल)

रमई काका
(18 अप्रैल)

शकील बदायूँनी
(20 अप्रैल)

शलभ श्रीराम सिंह
(22 अप्रैल)

शैलेश मटियानी
(24 अप्रैल)

रामधारी सिंह 'दिनकर'
(24 अप्रैल)

मलयज
(26 अप्रैल)

बालकृष्ण शर्मा 'नवीन'
(29 अप्रैल)

श्रीकृष्ण तिवारी
(29 अप्रैल)

मनोहर 'सागर' पालमपुरी
(30 अप्रैल)

कैफी आजमी
(10 मई)

शमशेर बहादुर सिंह
(12 मई)

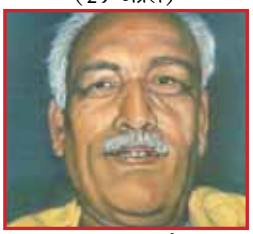
हजारी प्रसाद द्विवेदी
(19 मई)

गया प्रसाद शुक्ल सनेही
(20 मई)

मजरूह सुल्तानपुरी
(24 मई)

कामतानाथ
(25 मई)

श्रीकान्त वर्मा
(26 मई)

गोपाल प्रसाद व्यास
(28 मई)

राम विलास शर्मा
(30 मई)

परिचय-संक्षेप

वरिष्ठ कवि दिविक रमेश हमारे समय के शीर्ष साहित्यकार हैं। उनका वास्तविक नाम रमेश शर्मा है। उनके शब्दों पर केदारनाथ अग्रवाल, शमशेर बहादुर सिंह, त्रिलोचन, नागार्जुन, केदारनाथ सिंह, अशोक वाजपेयी, मंगलेश डबराल आदि ने समय-समय पर अपने विचार दिये हैं। प्रो. नामवर सिंह, प्रो. निर्मला जैन, प्रो.विश्वनाथ त्रिपाठी, प्रो. रामदरश मिश्र, प्रो. विश्वनाथ प्रसाद तिवारी, प्रो. ए. अरविंदाक्षन, डा. कमल किशोर गोयनका, प्रो. अजय तिवारी, प्रो.गोपेश्वर सिंह जैसे आलोचक उनके साहित्य को रेखांकित करते रहे हैं। कथाकार गंगा प्रसाद विमल, अब्दुल बिस्मिल्लाह, प्रणव कुमार बंद्योपाध्याय, तरसेम गुजराल, नाटककार प्रताप सहगल, प्रकाश मनु, व्यंग्यकार प्रेम जन्मेजय आदि ने भी उनकी कविताओं से हिंदी साहित्य जगत को अवगत कराया है। उनकी कविता-यात्रा के चार दशक पूरे हो चुके हैं। निकट अतीत में उनका दसवां कविता- संग्रह 'वहां पानी नहीं है' प्रकाशित हुआ है। अड़तीस वर्ष की उम्र में ही 'रास्ते के बीच' और 'खुली आंखों में आकाश' जैसी अपनी कृतियों पर सोवियत लैंड नेहरू एवार्ड जैसा अन्तर्राष्ट्रीय पुरस्कार पाने वाले वह ऐसे पहले कवि हैं।

रचना-संसार : गेहूँ घर आया है, खुली आँखों में आकाश, रास्ते के बीच, छोटा-सा हस्तक्षेप, हल्दी-चावल और अन्य कविताएँ, बाँचो लिखी इबारत, वह भी आदमी तो होता है, फूल तब भी खिला होता, खण्ड-खण्ड अग्नि (काव्य नाटक), नए कवियों के काव्य-शिल्प सिद्धांत, संवाद भी विवाद भी, कविता के बीच से साक्षात त्रिलोचन, 101 बाल कविताएँ, समझदार हाथी : समझदार चींटी (136 कविताएँ), हँसे जानवर हो हो हो, कबूतरों की रेल, बोलती डिबिया, देशभक्त डाकू, बादलों के दरवाजे, शेर की पीठ पर, ओह पापा, गोपाल भांड के किस्से, त से तेनालीराम, ब से बीरबल, बल्लूहाथी का बालघर (बाल-नाटक)

सम्मान : गिरिजाकुमार माथुर स्मृति पुरस्कार, सोवियत लैंड नेहरू पुरस्कार, दिल्ली हिंदी अकादमी का साहित्यिक कृति पुरस्कार, साहित्यकार सम्मान बाल तथा साहित्य पुरस्कार, एन.सी.ई.आर.टी. का राष्ट्रीय बाल साहित्य पुरस्कार, बालकनजी बारी इंटरनेशनल का राष्ट्रीय नेहरू बाल साहित्य अवार्ड, इंडो-रशियन लिटरेरी क्लब, नई दिल्ली का सम्मान, अनुवाद के लिए भारतीय अनुवाद परिषद, दिल्ली का द्विवागीश पुरस्कार, रतन शर्मा बाल-साहित्य पुरस्कार

संपर्क : ग्रेंड अजनारा हेरिटेज, एल- 1202, सेक्टर-74', नोएडा- 201304, मोबाइल नंबर : 9910177099,
लैंड लाइनः 0120-4168219),
ई-मेल : divikramesh34@gmail.com

कवि दिविक रमेश का शब्द-समय

साहित्य में अंधश्रद्धा और अंध विरोध, दोनों खतरनाक

'कविकुंभ' से विशेष बातचीत में हमारे समय के वरिष्ठ कवि-लेखक दिविक रमेश ने कहा कि साहित्य में अंधश्रद्धा और अंध विरोध दोनो खतरनाक हो सकते हैं। किसी भी विचार, सोच, पड़ाव, प्रतिष्ठान, या स्वयं के प्रति भी, साहित्यकार की न तो अंधश्रद्धा होनी चाहिए, और न ही अंधविरोध। विचारक और कवि के बीच का रिश्ता नेता और अनुयायी का नहीं है। साहित्यकार अपना रास्ता खुद तय करे। कवि यदि उस विचारधारा के मूल स्रोत के साथ पहचान नहीं कर पाता- वह यदि अपनी संवेदना की राह उस विचारधारा के समानांतर नहीं आ पाता, तो वह कवि और कविता की ही भूमिका नहीं निभाता। इस अर्थ में वह अपनी रचनात्मक भूमिका में बुद्ध, ईसा, पैगम्बर, मार्क्स, गांधी अथवा किसी भी नेता से कम नहीं होता। वह बेलाग ढंग से मौलिक होता है।

प्रश्न : भारतीय समाज और सत्ता प्रतिष्ठान की दृष्टि से आपकी नजर में समकालीन साहित्य पर हमारे समय का सबसे बड़ा सवाल क्या है, जवाब क्या है?

दिविक रमेश : सबसे पहले तो हमें समझना होगा की भारतीय समाज अन्ततः मनुष्यों का ऐसा समाज है, जिसकी बुनियाद में सांस्कृतिक विरासतों की सहज उत्सुकताओं से परिपूर्ण निर्माण-प्रवृत्तियों का इतिहास मौजूद है। सरल शब्दों में इसे बहुलतावादी संस्कृतियों का समाज कहा जाता है, कुछ विद्वान जिसे आक्रमणों और अतिक्रमणों की निगाह से भी देखते हुए मनुष्यों को बांटते रहने के प्रयासों में जान खपाए रहते हैं। यदि हम किसी भी संस्कृति की गहराई में जाएं तो वह अपने मूल्यों और अवदानों के आधार पर समाज में मनुष्य को मनुष्य से अलग करती नजर नहीं आती, कम से कम आत्मिक आशयों में। इतिहास बताता है कि जब संस्कृतियों में मठाधीशी और साम्प्रदायिकता प्रवेश करती हैं और वे अपने कट्टरपन के चरम की ओर अग्रसित होती हैं तो मनुष्यों को, अर्थात समाज को बांटने की परोक्ष (छल-कपट) अथवा प्रत्यक्ष (दादागिरी) सफल-असफल क्रियाएं किया करती हैं। इस कार्य में (उनके शब्दों में, अनुष्ठान में) वे अपने समय के सत्ता प्रतिष्ठान तथा सत्ता प्रतिष्ठान के अभिलाषियों की ओर भी मुखातिब होती नजर आती हैं। बहुत बार आंशिक रूप से या काफी हद तक सफल भी हो जाती हैं। ऐसे में भ्रम की स्थितियां भी जोर मारने लगती हैं। विचार अथवा दर्शन की आड़ में छद्मपूर्ण स्वार्थी लाभकारी उपलब्धियों की लूट मच जाती है।

संस्कृति के उपादान अर्थात कला, साहित्य, संगीत आदि भी राह भटकते अर्थात सता प्रतिष्ठान के अनुचर बने नजर आने लगते हैं। संकेत कर दूं कि अनुचर केवल विरुदावलियां गाकर ही फायदा नहीं उठाया करते हैं, आवश्यकता पड़ने पर

अच्छी और खराब रचना के बीच मुठभेड़ का सवाल

छंदयुक्त हो या मुक्तछंद, सिर्फ श्रेष्ठ रचनाओं का स्वागत, बाकी कचरा

प्रश्न : बड़ी गोलबंदियां हैं। हिंदी का छंदयुक्त और मुक्तछंद रचना-संसार मुठभेड़ में तो नहीं ?

दिविक रमेश : शुरू में ही स्पष्ट कर दूं कि जहां तक मेरा सवाल है, भले ही कवि के रूप में मैं छंदमुक्त (या अधिक उपयुक्त शब्द में कहूं तो मुक्तछंद) कविता रचता हूं लेकिन मैं पाठक और श्रोता के रूप में छंदयुक्त (गीत, नवगीत, दोहा, चौपाई,गजल, सॉनेट आदि) का प्रशंसक हूं। अतः मैं दोनों का पक्षधर हूं। मुझे छंदयुक्त और छंदमुक्त रचना-संसार की मुठभेड़ का सवाल हमेशा अनुचित और बेहूदा लगा है। मुठभेड़ का सवाल अच्छी और खराब रचना के बीच उठाना चाहिए। कोई रचना छंदयुक्त है, इसलिए श्रेष्ठ ही होगी अथवा कोई रचना छंदमुक्त है, इसलिए दो कौड़ी की होगी, यह समझ ही मेरी निगाह में मूर्खतापूर्ण है।

एक बात और समझने की है कि जब हम छंद की बात करते हैं तो प्रायः छंद-प्रकारों अर्थात दोहा, कवित्त, चौपाई आदि पारम्परिक छंद-प्रकारों या बंधे छंदों की बात किया करते हैं। छंद के जानकार ही नहीं बल्कि स्वयं छंदयुक्त और छंदमुक्त रचना करने वाले प्रतिष्ठित कवि त्रिलोचन की मान्यता है कि 'छंद से कविता का पीछा छूट नहीं सकता-' प्रोज पोयम' में भी टुकड़ों में छंद आएगा- लिखने वाला भले ही न जानता हो।' वस्तुतः एक ओर ऐसे छंदयुक्त रचनाकार हैं, जो 'छंद' की मूल अवधारणा को समझे बिना केवल विरासत में मिले छंद-प्रकारों में उलझे रहते हैं और दूसरी ओर ऐसे छंदमुक्त रचनाकार हैं, जो छंद के ज्ञान को भी वर्जित मानते हैं।

समझ होनी चाहिए कि छंद को भी तुक, मात्रा, वर्णों आदि की बाजीगिरी के बंधनों से मुक्त किया जा सकता है और यह समझ भी होनी चाहिए कि छंदमुक्त या मुक्तछंद रचना करना किसी कवि की छंद में न लिख पाने की मजबूरी अथवा सुविधा नहीं होनी चाहिए बल्कि अनिवार्यता होनी चाहिए। तब ही वह श्रेष्ठ रचना दे पाएगा। आत्ममुग्धता को जन्म देने और पोषित करने वाले समय के इस दौर में छंदयुक्त रचना और मुक्तछंद रचना दोनों का श्रेष्ठ होने पर स्वागत होगा ही। फूहड़ रचना को तो कचरे के डिब्बे में जाना ही होगा। चाहें तो इस विषय पर मेरे गहन अध्ययन का जायजा मेरे प्रकाशित शोध-ग्रंथ 'नए कवियोंके काव्य-शिल्प सिद्धांत' में लिया जा सकता है।

तथाकथित असहमतियों के बाने में आंख दिखा कर भी फायदा उठाया करते हैं। असल में वे पर उपदेश कुशल बहुतेरे की राह के वाहक हुआ करते हैं। और यह राह लोकतंत्र के लिए बहुत बड़ा खतरा सिरजती है। निःसंदेह लोकतंत्र में असहमति और प्रतिरोध की अग्रणी भूमिका होती है।

लेकिन यह भूमिका तब तक ही सार्थक हुआ करती है जब तक असहमति संवाद के खुले दरवाजे के साथ होती है और प्रतिरोध प्रतिशोध से संबंधविहीन होता है। समकालीन साहित्य अर्थात हमारे समय के साहित्य का ही नहीं बल्कि हर समय के समकालीन साहित्य के सामने सबसे बड़ा सवाल मनुष्यता को बचाए और बांधे रहने का रहा है। उसे उसके इर्द-गिर्द रची जा रही उसकी विभाजक रेखाओं से

दिल्ली के एक गाँव किराड़ी में मेरा जन्म हुआ। जहाँ तक मैं याद कर सकता हूँ, तब दिल्ली का अर्थ, मेरा गाँव न होकर, करौल बाग (देवनगर) होता था, जहाँ मेरा ननिहाल था। मेरे होश में, दिल्ली ने बहुत दिनों तक अपनी काया नहीं फैलायी थी। 5वीं कक्षा तक गाँव के स्कूल में पढ़ने के बाद मुझे आगे की पढ़ाई के लिए मेरे ननिहाल भेज दिया गया। स्कूल के कुछ अच्छे-बुरे अनुभव मेरे पास थे। गन्दी-गन्दी बातें क्या होती हैं, उनकी कुछ न कुछ जानकारी मुझे वहीं के परिवेश से हुई। कक्षा के एक सहपाठी ने, चालाकी से, मुझे गन्दी-गन्दी बातों के नाम पर (जो गाँव की किसी लड़की को लेकर थीं) मास्टर जी से डाँट भी पड़वाई थी। मैं संकोची बहुत था। अपना निर्दोष होना सिद्ध न कर सका। शारीरिक दृष्टि से मैं कमजोर था। शायद इसी का फायदा उठाकर लड़के मुझे चिढ़ाते रहते। इसीलिए दिल्ली जाने के प्रस्ताव पर मैं बहुत खुश हुआ था।

दिल्ली, यानी करौल बाग आना मेरे लिए कई दृष्टियों से नए-नए अनुभवों का कारण बना। कुछ ही दिनों बाद मैंने पाया कि स्कूल (जो लड़कों का था), में तो फिर भी एक-दो लड़के मित्र बन गए लेकिन मुहल्ले में प्रायः लड़कियां ही दोस्त बनीं। लड़कों का अपना अलग ग्रुप था और शायद गाँव का समझकर तथा कुछ मेरे संकोची स्वभाव के कारण वे मुझे अपने में नहीं मिलाते थे। कुछ दिनों बाद मैंने महसूस किया कि वे लड़के मेरे लड़कियों के साथ खेलने को लेकर भी इर्ष्यालु हो गए थे। घर में पढ़ाई पर ज्यादा जोर था। पिताजी भी, जब भी मिलते पढ़ने का महत्त्व ही बताते। पिताजी से मेरा बहुत लगाव रहा है। हालाँकि तब उनका गाना-नाचना मुझे पसन्द नहीं था। असल में वे हरियाणवी

नाना ने साहित्य और गंगा प्रसाद विमल ने कविता की ओर मोड़ा

मेरी पहली रचना सन 70 में 'मणिमय' में छपी

लोक गायक रहे हैं और स्वांग आदि में लोक नर्तक भी।

मेरे नाना साहित्यिक अभिरूचि के व्यक्ति थे। उनका अपना एक छोटा सा पुस्तकालय था। पुस्तकालय आदि में जाने का भी उन्हें शौक था। कई साहित्यिक-सामाजिक संस्थाओं के वे सक्रिय कार्यकर्ता/पदाधिकारी थे। उनके संसर्ग ने मुझे भी साहित्य और पुस्तकों की ओर मोड़ा। पिता जी का कला-प्रेम भी कहीं न कहीं संस्कारों में पड़ा। मैं ऐसे आयोजनों में भी जाता, जहाँ कविगण अपनी रचनाओं का पाठ करते। श्रोता उनकी प्रशंसा करते। मुझे याद है कि एक बार मैंने एक आयोजन देखा - स्वर्ग में कवि सम्मेलन। उसका भूत मुझ पर कितने ही दिन सवार रहा। सड़क के किनारे लगने वाले नाटक देखना भी मुझे पसन्द था। घर में मैं नकल उतारता।

हर इतवार को अपने और पड़ोसियों के घर पर आने वाले अखबारों में छपी बाल-रचनाएँ जरूर पढ़ता। आकाशवाणी से प्रसारित बाल कार्यक्रम भी जरूर सुनता। प्रारम्भ में शायद यही माहौल उत्तरदायी रहा उस रचना के लिए जो न जाने मैं कब और कैसे लिख बैठा। मुझे मात्र इतना याद है कि वह रचना एक कहानी थी, जो अपनी एक मित्र को लेकर लिखी थी और उसमें मित्र का नाम भी नहीं बदला था। भावुकता और आदर्श तो उसमें कूट-कूट कर भरा ही था। वह कहानी मैंने अपनी एक डायरी में लिखी थी, जो ढूँढने पर शायद कहीं मिल जाए। वह कहानी, उस बीच थोड़े हमदर्द बन गए दो लड़के-दोस्तों को पढ़ने को दी। इसके बाद जो घटना हुई, उसने मेरे जीवन में एक मोड़ ला दिया। तब मैं 13-14 वर्ष का रहा हूँगा। उन लड़कों ने कहानी में मुहल्ले की लड़की, मेरी मित्र का नाम देखकर, डायरी मेरे नाना जी को दे दी - मुझे बिना बताए। मुझे तब पता चला जब मैंने बार-बार अपनी डायरी उनसे माँगी और उन्होंने बड़ी शान से नाना जी को डायरी देने का राज खोला।

कहीं-न-कहीं वे नाना जी से मुझे पड़ने वाली डाँट का अनुमान कर खुश थे। मैं जबकि उन्हें डायरी देने को लेकर पछता रहा था तथा नाना जी से बचने की हर तरकीब सोच रहा था। दंग रह गया था, मैं जब मेरे सामने पड़ने पर नाना जी ने बड़े प्यार से पूछा -"क्या यह कहानी सचमुच तुमने लिखी है?' मेरे हाँ कहने पर, उन्होंने फिर पूछा, 'नकल तो नहीं की न?' मैंने कहा - नहीं। वे इतने खुश हुए कि मुझे शाबासी देते हुए बोले, 'जब भी तुम्हारा मन चाहे, लिखो ।' और भी कई बातें कही होंगी जो मुझे आज याद नहीं हैं। डायरी उन्होंने मुझे लौटा दी।

शायद नाना जी का वह प्रोत्साहन उस समय मेरे लिए किसी बड़े पुरस्कार से कम न रहा होगा। सच में वह वरदान सिद्ध हुआ। उसके बाद मैं थोड़े आत्मविश्वास के साथ लिखने लगा। कविता भी। हाँ कविता पर मंचों से सुनी कविताओं का असर भी जरूर रहा। मुझे याद है कि थोड़ा बड़ा होने पर, चीनी आक्रमण के समय किसी मंच से कोई कविता सुनकर मैं इतना प्रेरित हुआ था कि मैंने भी एक कविता लिखी - 'दूर हटो ऐ चीन कमीने, हिन्दुस्तान हमारा है।''

प्रारम्भ में, जहाँ तक कविता का सवाल है, मुझे मेरे मित्र, घर-परिवार के सदस्य, गाँव में स्थित गाय आदि लिखने को प्रेरित करते थे। वे ही मेरे विषय थे। रचनाएँ उन्हें सुनाकर मुझे बहुत अच्छा लगता था। तब तक छपने की ओर कोई ध्यान नहीं था। इस बीच, न जाने कैसे, फिल्में देखने का चस्का लग गया। फिल्मी गाने मुझे बहुत अच्छे लगते थे - खासतौर पर रुलाने वाले। फिल्मी गाने यूँ मैं आज भी सुनना पसन्द करता हूँ। खैर। फिल्मी गाने सुन कर मुझे भी वैसे ही गाने लिखने को मन होता। एक फिल्म फागुन (जिसका एक प्रसिद्ध गाना था। बादलो बरसो...) देखी तो उसके गानों से मैं इतना अभीभूत हुआ कि छन्द वन्द न जानते हुए भी मैंने फिल्मी अन्दाज के गीत लिखें - अब वे कहाँ हैं, मैं नहीं कह सकता।

जब मैं बी.ए. का छात्र था तो मेरे एक अध्यापक गंगा प्रसाद विमल भी थे। उन्होंने एक ओर जहाँ छन्द मुक्त (फ्रीवर्स) कविता लिखने को कहा, वहीं रचनाएँ पढ़ने की भी सलाह दी। साथ ही लम्बी कविता लिखने का सुझाव भी दिया। उन्हीं की प्रेरणा से मैंने 'फ्री वर्स'(मुक्तछंद में रचना) लिखना शुरू की। मैं अपनी पहली प्रकाशित कविता मणिमय (कलकत्ता) में, 1970 में प्रकाशित 'एक सूत्र' को मानता हूँ। यह कविता विमल जी के द्वारा सुधारी गई थी और शायद उन्हीं के कहने पर उक्त पत्रिका को भेजी थी। कविता का छपना मेरे लिए काफी प्रेरणादायी सिद्ध हुआ।

हिंदी कविता में आज तीन प्रकार के कवि

हिंदी कविता में आज तीन प्रकार के कवि हैं- एक वे जो 'जाने' जाते हैं। दूसरे वे जो 'माने' जाते हैं और तीसरे वे जो 'जाने-माने' जाते हैं। सबसे सौभाग्यशाली कवि दिखने में तो तीसरी श्रेणी के कवि हैं लेकिन असल में हैं वे दूसरी श्रेणी वाले कवि ही, क्यों कि 'माने' की श्रेणी में आने के बाद 'जाने-माने' की श्रेणी में उनका प्रस्थान आसान हो जाता है। दूसरी श्रेणी में वे कवि होते हैं, जिनकी ओर लाड़-प्यार वाला ध्यान, कुछ प्रभावशाली आलोचक, केंद्रित करते हैं। प्रायः इन्हें ही संस्थाओं के फल-फूल प्राप्ति का सौभाग्य प्राप्त होता है। बड़े प्रकाशकों के पिछ्लग्गूपन का आस्वाद भी इन्हें ही मयस्सर होता है। पत्र-पत्रिकाओं की विशिष्ट शोभा भी इन्हीं से बढ़ाई जाती है। पाठ्यक्रमों में भी ये ही अवलोकित होते हैं। ये ही वे होते हैं जिन्हें अन्य समर्थ कवियों की कुंठा का कारण बनाने के भी भरपूर प्रयत्न चलते रहते हैं, इत्यादि, इत्यादि। समकालीन हिंदी साहित्य में रामदरश मिश्र, अशोक वाजपेयी, विष्णु खरे, भगवत रावत, मंगलेश डबराल, अशोक सिंह, निर्मला पुतुल, बोधिसत्व, हेमंत कुकरेती, प्रताप राव कदम, बद्रीनारायण, मनमोहन, पंकज चतुर्वेदी, नीलेश रघुवंशी, डॉ. कृष्ण कुमार, अनामिका, सूरजपाल चौहान, हेमराज सुंदर, सुंदर चंद ठाकुर, लक्ष्मी शंकर वाजपेयी, अशोक चक्रधर, नरेश शांडिल्य आदि अच्छी रचनाएँ दे रहे हैं। तेजेंद्र शर्मा, दिव्या माथुर, डॉ. कृष्ण कुमार, उषा राजे सक्सेना, सुषम बेदी, डॉ. गौतम सचदेव, अनिल जनविजय, डॉ. पुष्पिता, निखिल कौशिक, हेमराज सुंदर, डॉ. सत्येंद्र श्रीवास्तव, पद्मेश गुप्त, अरविंदाक्षन, पद्मजा घोरपड़े, प्रतिभा मुदिलियार, क्षमा कौल की रचनाएं बार-बार, बरबस हमारा ध्यान खींच रही हैं। हिंदी कविता का संसार या क्षितिज बहुत फैलाव लिए हुए है। एक ओर देश की धरती पर हिंदी और हिंदीतर प्रदेशों में रची गई अथवा जा रही कविता है तो दूसरी ओर देश के बाहर प्रवासी और भारतवंशी कवियों के द्वारा संभव कविता है। रूप और शैलियों की दृष्टि से भी देखें तो हिंदी कविता को समृद्ध पाएँगे। यहाँ काव्य नाटक और लंबी कविताएँ भी हैं और गजल, गीत और छंदबद्ध रचनाएँ भी खूब लिखी जा रही हैं।

रचनात्मक स्तर पर बचाए रखने का रहा है। उसे बेहतर बनाने का रहा है। सत्ता प्रतिष्ठान के द्वारा 'सम्मान'और 'उपेक्षा' के जाल में खुद को न फंसने देने का सवाल भी रहा है। सत्ता प्रतिष्ठान का एक सच यह भी है कि वह, भीतर ही भीतर, संस्कृति कर्मियों को बांटने के उपक्रम में भी तल्लीन रहा करता है, स्वयं उनके स्तर पर भी सत्ता प्रतिष्ठान खड़े कर दिया करती है। अपनों के ही द्वारा अपनों के बीच महान और हीन का संसार रच सकती है।

सवाल स्पष्ट हो तो जवाब भी स्पष्ट होता है। जवाब इतना ही है कि साहित्यकार की किसी भी विचार, सोच, पड़ाव, प्रतिष्ठान या स्वयं के प्रति भी न तो अंधश्रद्धा होनी चाहिए और न ही अंधविरोध। बहुत पहले 29 फरवरी, 1976 के धर्मयुग में मेरा एक लेख प्रकाशित हुआ था 'कविता की सही भूमिका' (जो बाद में मेरी पुस्तक 'कविता के बीच से' में संकलित हुआ) जिसकी मुझे याद आ रही है। मैंने लिखा था कि विचारक और कवि के बीच का रिश्ता नेता और अनुयायी का नहीं है। कवि यदि उस विचारधारा के मूल स्रोत के साथ पहचान नहीं कर पाता- वह यदि अपनी संवेदना की राह उस विचारधारा के समानांतर नहीं आ पाता, तो वह कवि और कविता की ही भूमिका नहीं निभाता। इस अर्थ में वह अपनी रचनात्मक भूमिका में बुद्ध, ईसा, पैगम्बर, मार्क्स, गांधी अथवा किसी भी नेता से कम नहीं होता। वह बेलाग ढंग से मौलिक होता है। इस कथन का यह आशय कतई न लिया जाए कि निजी या तथाकथित स्वतंत्रता के नाम पर अनाप-शनाप लिखने वालों को छूट दी जा रही है।

अपेक्षा यह है कि साहित्यकार अपना रास्ता खुद तय करे ताकि उसके लेखन में आरोपण के स्थान पर सहजता आ सके। अभिव्यक्तिगत स्पष्टता आ सके। रचनाकार निःसंदेह सामाजिक प्राणी ही होता है। संवेदना व्यक्ति-विशेष विचार- विशेष की पहचान न होकर व्यक्ति-आत्म की पहचान होती है, उसकी सही तलाश होती है। यही कारण है कि कि बहुधा 'मिथक' और इतिहास को भी एक रचनाकार अपनी तरह का स्वर और समझ देने की क्षमता रखता है। बुनियादी तौर पर रचनाकार मनुष्य और मनुष्यता के अस्तित्व का पक्षधर होता है। जहां-जहां मनुष्य और मनुष्यता पर आघात होता है उसकी रचना उसके प्रतिरोध की भूमिका में सशक्त ढंग से खड़ी होती है। रचनाकार की रचना मनुष्य और मनुष्यता की खोज में निरंतर लगी रहती है और प्रेरक की भूमिक में भी निरंतर रहती है। वह समाज में घोषित बुरे से बुरे या कमतर से कमतर मनुष्य के की भी भीतरी मनुष्यता, क्षमता और पहचान को न केवल खोजती तथा प्रतिष्ठित करती है बल्कि स्वयं उसको और उसके समाज को उनकी पहचान के लिए समझ के साथ प्रेरित भी करती है।

संवेदनाओं की हत्या का वक्त और 'मां गांव में है'

अरुण होता

कविता की दुनिया में शायद ही ऐसा कोई कवि होगा जिसने मां केंद्रित कविता न लिखी होगी। मां के प्रति अपनी भावनाओं का उद्गार इस तरह की कविताओं में पाया जाता है। कवि का भाव जगत जैसे जैसे परिपक्व होता जाता है, उसके विचार समृद्ध होते हैं, वैसे मां संबंधी कविताओं में निखार होता है। ऐसी कविताएं नैसर्गिक संवेदना से युक्त होती हैं। विचार और संवेदना के मणि-कांचन संयोग से ये कविताएं उत्कृष्ट बन जाती हैं। दिविक रमेश ने भी मां को केंद्र में रखकर अनेक कविताएं लिखी हैं। उनके एक कविता- संग्रह का नाम भी है ' मां गांव में है'। इसकी पहली कविता में ही कवि ने गांव में जन्मे लेकिन शहरी वातावरण में पले-बढ़े लोगों की मानसिकता को उघाड़ते हुए युगीन विडंबनाओं को प्रस्तुत किया था। इसी तरह सद्यतम कविता 'मां के पंख नहीं होते' में कवि ने मां के अपूर्व त्याग और प्रेम को अत्यंत सहज तथा स्वाभाविक रूप में प्रस्तुत किया है-

'मां के पंख नहीं होते/ कुतर देते हैं उन्हें/ होते ही पैदा/ खुद उसी के बच्चे।'

भले ही मां गालियां बके, शरापे, मारे या पीटे लेकिन मां बनते ही उसकी दुनिया बच्चों का संसार बन जाती है। मां, मां होती है। सिर्फ मां। भले ही हर आवाज पहचानी जाए, लेकिन रोटियां फैलाने वाली मां की हथेलियों के हलके से आनेवाली आवाज को केवल कवि का अंतर्मन ही पहचान पाता है। मां स्रष्टा है। सृजन करती है, भले ही खामोश रहकर। कवि के शब्दों में कहा जा सकता है झ

'क्यों लगता है / आवाज आग भी तो हो सकती है/ भले ही वह/ चूल्हे ही की क्यों न हो, खामोश ।'

कवि मां के बारे में सोचता है तो पृथ्वी याद आती है। मां की स्मृति में डूबा रहता है तो आकाश उसमें डूबा हुआ पाता है। दिवंगत मां की याद में खोया कवि के लिए यह अहसास होता है कि उसकी मां विश्व-ब्रह्मांड में व्याप्त है। 'तू तो है न मेरे पास' शीर्षक कविता में कवि सोचता भी है -

'न हुआ होता मैं/ तो शायद खोज पाती मां/ अपना कोई सपना

थमी न रहती सिर्फ चाह पर।'

कवि ने अपने अस्तित्व, अपनी सफलता और अपनी तमाम उपलब्धियों के पीछे मां के योगदान और निर्माण को महत्व दिया है। आज के दौर में संवेदनाओं की हत्या हो रही है। मनुष्य उपभोक्तावादी सभ्यता के हाथों पुतला बनता जा रहा है। उसे केवल अपना स्वार्थ ही परमार्थ प्रतीत होता है। ऐसी स्थिति में संवेदनाओं को जीवित रखने के प्रयास में रची गयीं इन कविताओं का विशेष अर्थ है।

दिविक रमेश की कविताओं की सबसे बडी सामर्थ्य उनका जीवन के प्रति आस्थावान होना है। 'उदासी पर नहीं है कविता' में स्वर्गीय मंगतू के बहाने मानव जीवन के मूलमंत्र को प्रकट करने का प्रयास किया गया है। जीवन के प्रति आशा और विश्वास का भाव ही मनुष्य को अग्रगामी बनाता है। मंगतू तमाम प्रतिकूल परिस्थितियों में भी अपना जीवन व्यतीत करने के लिए तैयार है। केवल उसे चाहिए:

'बस चाहता है एक अपनी सी छुवन/ पकड़ कर उंगली/ जो ले जा सके सृजन की उन्मुक्त राहों पर।'

भोगवादी समय में 'अपनी सी छुवन' यानी आत्मीयता का स्पर्श महौषधि के समान है। इसका घोर अभाव है। जीवन को सुंदर तथा अमृतमय बनाने के लिए इसकी सर्वाधिक प्रयोजनीयता है। कवि की रचनाशीलता में मानवीय भावों और गुणों की महत्ता प्रतिपादित हुई है। इसलिए कवि ने अपने अन्य कविता संग्रहों की भांति इस कृति में भी मानवीय संबंधों की प्रतिष्ठा हुई है। महानगरीय जीवन में व्यक्ति केंद्रीयता इस कदर छाई हुई है कि हम अपने पड़ोस में रहने वालों से अपरिचित रहते हैं। अजनबीपन चरम पर है। ऐसी हालत में दिविक रमेश 'कुछ सपने अपने' में लिखते हैं-

'कैसे समझाऊं कि पड़ोसी की हत्या में/ कुछ हत्या मेरी भी हुई है/ कि पड़ोसी के सपनों में/ कुछ सपने थे मेरे भी ।'

इसी तरह व्यक्ति को जब 'अतिरिक्त' होने का भाव सताता है तो यह रिश्ते के खोखलेपन या रिश्ते में आई दरार को सूचित करता है। इस पारिवारिक या सामाजिक विडम्बना को कवि की पारखी नजर रूपायित करती है-

'भीतर तक हिला देता है यह/ गैरजरूरी सा

होने का एहसास।/ कभी-कभी तो लगता है कि सेल्फ में रखी किताबों से भी ज्यादा/ हो गया हूं अतिरिक्त।'

नृशंस समय में तमाम रिश्तों को ताक पर रख देना मानवता के समक्ष गंभीर चुनौती है-

'क्या भून डाला जाएगा/ अपने किसी भाव या विचार के लिए/ उनकी मांओं को भी/ उनकी पत्नियों को भी/ भाई और बहनों/ बेटे और बेटियों को भी।'

संबंधों की ऊष्मा पर कवि का गहरा विश्वास है। इसलिए कविता के पाठक कवि के साथ यानी उसके भाव के साथ हो जाते हैं और उन्हें लगता है कि कवि उनके भावों को ही कविता के रूप में ढाल रहा है। रिश्ते के मजबूत तार से बंधे रहने के सुख के सामने सबकुछ व्यर्थ है। कवि की 'तार' शीर्षक कविता का पाठ इस दृष्टि से महत्वपूर्ण है-

'उतरते उतरते/ जाने कब हम/ बंधने लगते हैं तार से।/ जाने कब हम/ भटक जाते हैं अपनी दिशाएं/ अपने ही तारों के जंगल में।'

पूंजीवादी व्यवस्था में जनपक्षधरता की प्रासंगिकता और भी अधिक हो जाती है। इसलिए इस कवि ने जनपक्षधरता के आधारभूत तत्वों की महत्ता को प्रतिपादित किया है। बाजारवादी अर्थव्यवस्था भले ही जनपक्षधर कविता को कमतर आंके लेकिन दिविक रमेश का कवि ऐसा नहीं मानता। वह इसकी शक्ति से परिचित है। उसे पता है कि जब-जब ऐसी स्थिति आती है, कविता अधिक मजबूती के साथ उपस्थित होती है। कविता आम आदमी, शोषित, दमित, दलित, उपेक्षित जन की वाणी बनकर आती है। दिविक की कविता इन वंचित लोगों के साथ खड़ी दिखाई देती है। आम आदमी के प्रति कवि की प्रतिबद्धता स्पष्ट झलकती है।

सबसे बड़ी बात यह है कि दिविक का कवि आमजन के प्रति दया और सहानुभूति से प्रेरित होकर उनका चित्रण नहीं करता, बल्कि उनके प्रति संवेदनशीलता से भर कर कविता लिखता है। उपेक्षित वर्ग के प्रति कवि अत्यंत संवेदनशील है। जो भी उसे उम्मीद है, सिर्फ इसी वर्ग से है। कवि के शब्दों में-

'इस बार मरियल सी वह कड़क औरत/ सांवली सी वह जवान मां/ और पिलूरों से वे तमाम बच्चे/ जैसे बोटी-बोटी नोंच लेने की नियत से/ एक साथ चीखे--/ आसमान तू कहां है?'

दिविक ने अपनी कविता 'मैंने जो कहा था' में इसका जिक्र किया है कि कौवा हंस रहा था और एक सामान्य लड़की राजकुमारी बनने को सोच सकती है। जानकारों ने उन पर आरोप लगाया तथा दंडित करना चाहा। बीच चौराहे पर खड़ा कर दिया। इसके माध्यम से कवि ने उस स्थिति की ओर इशारा किया है, जहां कवि, चिंतक और दार्शनिक बेवजह तथाकथित 'जानकारों' से दंडित एवं प्रताड़ित होते आये हैं। उन्हें अकारण विषपान करना पड़ा है। परंतु ये अपने विचार में अडिग रहते हैं। उक्त कविता में कवि भी सोचता है-

'हांलाकि हर्ज भी क्या होता/ अगर हंसे होते कौवे/ और की होती जुर्रत मामूली लड़कियों ने होने को राजकुमारियां।'

इसी तरह 'कड हाजिर है' के रामसिंह के चरित्र को कलात्मक्ता और संवेदनशीलता के साथ प्रस्तुत किया है। रामसिंह को मालूम है कि उसे जन्म ही मिला है लदने के लिए। एक अदभुत खयाल आता है कवि को कि अगर रामसिंह जानवर हो जाए तो वह कैसा महसूस करता? कवि कहता है-

'रामसिंह खुश होगा, लगता तो यही है/ खुश होगा सींगों के लिए/ थोड़ा और लाद सकेगा सामान सींगों पर/ कुछ और सपनों के लिए।'

कैसी विडंबना है कि आम आदमी सब कुछ सहता जा रहा है। उसके अंदर का विरोध और प्रतिरोध सब समाप्त होते जा रहे हैं। सींगों से धरती उखाड़ने के दृश्य देखे जाते हैं अथवा सींगों से सींग भिड़ाए जाते हैं, न कि उन पर कोई जानवर माल लादने की अनुमति देता है। कैसा समाज है यह कि हम रामसिंह जैसे मासूम जीते-जागते मनुष्य को जानवर से भी गया गुजरा बना देते हैं। दिविक ने इस अमानवीय व्यवहार एवं क्रूरता पर अपनी चिंता व्यक्त की है। कहना न होगा कि दिविक रमेश की कविता सामाजिक सरोकारों की कविता है। इस संदर्भ में कवि ने किसान का घर से खेत के लिए निकलने का दृश्य- बिंब काव्य-विवेक के साथ प्रस्तुत किया है-

'संभावनाओं की अथाह दुवाओं सा/ है खेत उसका।/ बच्चों की सामूहिक किलकारियों सी हैं फसलें/ एक संगीत है झुके बादलों सा/ उसकी भौंहो पर।'

फसल की उगाही के बाद खेत में छोड़े गए खूड को देखकर कवि प्राण कहता है–''जैसे खेत जोतता गुजरता है किसान/ खूड छोड़ता/ पृथ्वी पर संभावनाओं की।''

दिविक रमेश हमारे समय के जागरुक कवि हैं। उन्होंने सत्ता, धर्म और लोकतंत्र के नाम पर प्रचलित अव्यवस्थाओं पर न केवल कटाक्ष किया है बल्कि उनकी गहराई में धंसकर समाज और राष्ट्र की सेहत को थोड़ा बेहतर बनाने का प्रयास भी किया है। धार्मिक संकीर्णता, घृणा और सांप्रदायिकता को बढावा देने में पुजारी, पंडे, मौलवी, पादरी के हाथ हो सकते हैं। इन्हें यह नहीं पता-

'जब सिखाता है कोई/ नफरत करो मस्जिद से/ तो नहीं जानता कैसे/ नफरत होने लगती है मंदिर से भी।'

कवि अपनी दृष्टि का परिचय देते हुए प्रेममय वातावरण की कामना करता है- 'अभी तो/ प्यार ही दिखता है हर जगह/ हर जगह जैसे दिखता है आकाश अपना/ बावजूद तरेड खाई धरती के।' इसी तरह सत्ता के पास हथियार होते हैं। योजनाएं होती हैं। दांव-पेंच हैं। सबसे भयानक है- 'उस–के पास उत्सव है मौत का।' सत्ता और धर्म की इस सांठ-गांठ में लोकतंत्र का धूमिल होना स्वाभाविक है। 'लोकतंत्र के लोकतंत्र में' कविता के माध्यम से कवि ने लोकतंत्र के असली चरित्र को उजागर किया है कि पूरी व्यवस्था में घुन लग चुका है, इस खोखले तंत्र से कुछ हासिल होने वाला नहीं है-

'क्यों लगने लगा है बुढ़ाती आंखों को/ कि इस बेबस लोकतंत्र में/ न रह गया है अर्थ चुप्पी का/ और न ही किसी अभिव्यक्ति का।'

लेकिन इस कवि की कविताएं हमें निराश नहीं करतीं, उदास नहीं करतीं बल्कि हममें विश्वास

के भाव भरती हैं, उम्मीदों से भरती हैं- 'गनीमत है कि अभी अनशन से दूर हैं हमारी खुशबुएं।' दिविक के प्रत्येक कविता संग्रह में जो कुछ भी बचा हुआ है उसे बचाए रखने का प्रबल आग्रह है।

'वहां पानी नहीं है' में संग्रहित कविता 'बचाए रखना है तुम्हें' शीर्षक की पंक्तियां पढ़ी जा सकती हैं- 'बचाए रखना है तुम्हें/ बचाए रखना है उनसे/ बचाए रखना है/ अपने सिर के भूत को, प्रेत को/ जिन को, डाकिनों को/ और सबसे ज्यादा कविता को।' सफलता मिले या न मिले, लेकिन प्रयास जरूरी है- 'एक उम्मीद की टोकरी लटकाए पीठ पर/ उसके पीछे जाने में, बारबार जाने में/ जीते जी जाने में।/ यकीन नहीं मुझे अपनी मृत्यु के बाद वाले जीवन में यूं भी।' समय की विडंबनाओं को कवि ने शिद्दत के साथ रेखांकित किया है। इस रेखांकन में कविता की बहुआयामिता परिलक्षित होती है। दिविक रमेश की कविताओं का एक महत्वपूर्ण संदर्भ है पर्यावरण का। पेड, हवा, मिट्टी, आकाश, पर्वत, अग्नि , जल, नदी, समुद्र आदि के माध्यम से कवि ने अपनी प्रकृति और पर्यावरण संबंधी चिंताओं को साझा करने का प्रयास किया है। पर्यावरणीय चिंता में कवि की दृष्टि मनुष्य तक सीमित नहीं, पेड-पौधे तथा पशु- पक्षी भी समाहित हैं। 'हमारा कबूतर' कवि की सूक्ष्म दृष्टि, संवेदना की व्यापकता और बहुआयामिता का परिचय प्रदान करती है। 'वहां पानी नहीं है' शीर्षक कविता में भी उपर्युक्त तमाम वैशिष्ट्य निहित हैं। पानी का न होना जीवन का न होने के समान है। वहां पानी नहीं है–यह कोई स्टेटमेंट नहीं है, गंभीर चिंता है। इसलिए कवि आग्रह करता है कि इसे सवाल की तरह पूछा जाना चाहिए कि वहां पानी क्यों नहीं है। पानी न होने के कारक तत्व कौन से हैं? इसके लिए जिम्मेदार कौन हैं? कैसे बचाया जा सकता है वहां का पानी-

'अगर आसमान एक है?/ और जमीन भी/ तो क्यों क्रूर है वहीं का आसमान?/ तो क्यों क्रूर है वहीं की जमीन?' इस भयानक समय में 'अगर कोई हंस रहा है/ तो वह है इक्कीसवीं सदी।'

बूढ़ी माँ

बूढ़ी माँ ने धोकर दाने।
आँगन में रख दिए सुखाने।
धूप पड़ी तो हुए सुहाने।
आई चिड़ियाँ उनको खाने।
आओ बच्चो, आओ चलकर,
बूढ़ी माँ की मदद करें हम,
चलो उड़ा दें दानों पर से
बजा-बजा कर ताली हम तुम,
वर्ना सोचो क्या खाएगी।
वह तो भूखी रह जाएगी।
चिड़ियों की यह फौज नहीं तो
सब दानें चट कर जाएगी।
आओ बच्चो आओ चलकर
बूढ़ी माँ का काम करें हम।
नहीं हैं बच्चे उनके घर में,
चलो न चलकर काम करें हम।

चिड़िया का ब्याह

चिड़िया की बारात नहीं आती,
चिड़िया पराई नहीं हो जाती,
चिड़िया का दहेज नहीं सजता,
चिड़िया को शर्म नहीं आती,
तो भी चिड़िया का ब्याह हो जाता है,
चिड़िया के ब्याह में पानी बरसता है,
पानी बरसता है पर चिड़िया,
कपड़े नहीं पहनती ,
चिड़िया नंगी ही उड़ान भरती है,
नंगी ही भरती है उड़ान चिड़िया,
चिड़िया आत्महत्या नहीं करती।

मां

रोज सुबह, मुँह-अंधेरे
दूध बिलोने से पहले माँ चक्की पीसती,
और मैं घूमेड़े में आराम से सोता,
तारीफों में बंधीं माँ
जिसे, मैंने कभी सोते नहीं देखा,
आज जवान होने पर एक प्रश्न घुमड़ आया है-
पिसती चक्की थी, या माँ?

सर्वेश्वर दयाल सक्सेना, रमेश रंजक, मैनेजर पांडेय, डॉ. शांति सुमन, रवींद्र भ्रमर, बुद्धिनाथ मिश्र की पंक्तियां प्रश्न-चिह्नित!

बड़ों की चूक पर नचिकेता का दो टूक

समकालीन गीत-नवगीत पर 'कविकुंभ' के लिए प्रेषित सविस्तार इस लेख में वरिष्ठ कवि नचिकेता लिखते हैं- 'वर्ष 1960 के बाद से अब तक नवगीत की गंगा में बहुत पानी बह चुका है; लेकिन सारा पानी या गंगा में प्रवाहित होने वाले सभी पदार्थ मंदिर में चढ़ने लायक नहीं हैं, साफ जल के साथ ढेरों कूड़े-कचरे भी बहते रहते हैं और ये कूड़े-कचरे सड़कर गंगा के जल को प्रदूषित करते रहते हैं। इसलिए हमें नवगीत में मौजूद अंतर्विरोधों को नजरअंदाज नहीं करना चाहिए। लोकभाषा के शब्दों और मुहावरे का अपने गीतों में कलात्मक प्रयोग करते समय इस बात पर रचनाकार का ध्यान केंद्रित होना चाहिए कि लोकभाषा के शब्दों और मुहावरे से लोक-आस्था भी जुड़ी होती है तथा लोक-आस्था में प्रगतिशील और प्रतिगामी दोनों तरह की आस्थाएँ शामिल होती हैं। एक सचेत गीतकार को लोकभाषा के शब्द और मुहावरे के चयन के समय इन शब्दों के वर्ग चरित्र पर हमेशा ध्यान रखना होता है और प्रतिगामी लोक-विश्वासों को हू-ब-हू ग्रहण कर लेने से गीत का वर्ग-चरित्र भी प्रतिगामी और प्रतिक्रियावादी हो सकता है।'

शिवबहादुर सिंह भदौरिया का यह गीत - 'इंद्र को मनायेंगे टोटको के बल/ रात गए निर्वसना जोतेगी हल/ ले आना अन मन से होकर निश्छल/ कोछ भर चबेना और लोटे भर जल/ आओ पिया, कुहराएँ बादल-बादल/ सूखा धनखेत और पोखर का जल।' वैदिक काल से ही यह प्रतिगामी लोक-विश्वास चला आ रहा है कि इंद्र देवता की कृपा से ही वर्षा होती है तथा निर्वसना औरत अगर रात में अकेले हल जोतती है तो कुपित इंद्र देवता प्रसन्न हो जाते हैं और भीषण सूखे में भी मूसलाधर वर्षा होने लगती है। यह मिथ्या अंधविश्वास, दकियानूस विचार और प्रतिगामी आडंबरों को बढ़ावा देना

हुआ। हद तो तब होती है जब शिव बहादुर सिंह यह जानते हुए कि निर्वसना स्त्री के हल जोतने से इंद्र देवता द्रवित नहीं होंगे, यह एक टोटका भर है। फिर भी वे यह टोटका करने की जिद पर अड़े दृष्टिगोचर होते हैं। यह मानव-समाज की पूरी विकास-यात्रा को नकारकर उसे आदिम बर्बर युग में ले जाने का प्रयास नहीं है, तो क्या है?

ऐसे ही प्रतिगामी विचार बुद्धिनाथ मिश्र के इस गीत में भी है- 'घर की मकड़ी कोने दुबकी/ वर्षा होगी क्या?/ बाईं आँख दिशा की फड़की/ वर्षा होगी क्या?/ सुन्नर बाभिन बंजर जोते/ इन्नर राजा हो/ आँगन आँगन छौना लोटे/ इन्नर राजा हो/....लाज तुम्हीं पियरी की रखना/ हे गंगा मइया/ रेत नहा गौरैया चहकी/ वर्षा होगी क्या?'

बुद्धिनाथ मिश्र मिथिला के हैं, जहाँ यह अंधविश्वास और अधिक घनीभूत हो गया है कि ब्राह्मण की सुंदर कन्या अगर बंजर जमीन को जोतेगी तो इंद्र देवता प्रसन्न होकर वर्षा करेंगे। बुद्धिनाथ मिश्र के यहाँ तो किसी शुभ संदेश के आगमन की सूचना बायीं आँख के फड़कने से मिलती है तथा वे वर्षा होने के लिए इंद्र के साथ-साथ गंगा मइया को भी गुहराते हैं। ऐसी घोर प्रतिक्रियावादी लोकास्था का गीत में अगर प्रचार-प्रसार होगा तो वह गीत प्रतिगामी विचारों का संवाहक नहीं होगा तो क्या प्रगतिशील होगा? बुद्धिनाथ मिश्र का यह गीत केवल प्रतिक्रियावादी अंधविश्वास और धर्मिक पाखंडों को ही स्थापित नहीं करता, वरन केवल ब्राह्मण कन्या को सुंदर होने की उद्घोषणा करके रंगभेद वाली कुत्सित विचारधारा का भी प्रचार करता है। जाहिर है कि लोकविश्वासों को अपने गीतों में स्थान देने के पहले उसमें अंतर्निहित अर्थ को भी पहचान लेना आवश्यक होता है।

नामवर सिंह पंत की 'ग्राम्या' के यथार्थवाद पर विचार करते हुए इस निष्कर्ष पर पहुँचे हैं कि 'एक ओर ग्राम-प्रकृति की अब तक उपेक्षित सुषमा का मुग्ध अंकन, ग्रामीणजनों के हर्ष-उल्लासपरक नृत्यों की जीवंत भावना तथा नाद-चेतना का चित्रण, ग्राम-युवती के अकृत्रिम स्वस्थ मांसल सौंदर्य की प्रशंसा और रूढ़ि-जर्जर गाँवों की प्रथाओं पर प्रहार - ग्राम-देवता की भर्त्सना, पतिगृह जानेवाली ग्रामवधू की नकली रुलाई का उपहास - और इन सबके ऊपर साम्राज्यवादी व्यवस्था द्वारा ध्वस्त गाँवों की आर्थिक हीनता का मार्मिक उद्घाटन; ये सभी बातें कवि की जागरुक दृष्टि तथा व्यापक सहानुभूति का पता देती हैं।' प्रश्न है कि क्या शिवबहादुर सिंह भदौरिया और बुद्धिनाथ मिश्र ने पंत जी की ग्राम्य-चेतना से कुछ नहीं सीखा, जो भारत के रूढ़ि-जर्जर गाँवों और ग्रामीण जनों में व्याप्त अंधविश्वास के उदात्तीकरण को अपनी नव्यता और प्रयोगधर्मिता मानने लगे हैं।

दो समानांतर पाटों के बीच गीत

नामवर सिंह और देवेंद्र शर्मा 'इंद्र' से सहमत

कवि नचिकेता कहते हैं कि आज समकालीन गीत की मुख्य धारा नवगीत और जनगीत के दो समानांतर पाटों के बीच से होकर प्रवाहित हो रही है। आज 'गीत' कहने का अर्थ है नवगीत और जनगीत का साझा स्वरूप। आज परंपरागत गीत और मंचगीत समकालीन गीतधरा का प्रतिनिधित्व नहीं करते। आज की कविता का जो नया स्वरूप और चरित्र उभरा है, वह नई कविता और जनवादी कविता के परस्पर समन्वय और सामंजस्य, या कहें कि द्वंद्वात्मक एकता से निर्मित हुआ है।

यह बात दीगर है कि जनबोध अब भी नवगीत की मूल्य-दृष्टि में पूरी तरह घुल-मिल नहीं सका है। 'नवगीत' और 'जनगीत' दो अलग-अलग काल-खंडों में गीत-रचना के धरातल पर आए गुणात्मक परिवर्तनों को पहचानने और परखने वाले कारक थे। आज इसकी जरूरत नहीं रह गई है। यह एक ऐतिहासिक तथ्य है कि पिछले तीन दशकों से गीत-रचना के क्षेत्र में कोई गुणात्मक बदलाव नहीं आया है, इसलिए गीत के आगे से नव या जन विशेषण हट जाना चाहिए।

नचिकेता के शब्दों में - देवेंद्र शर्मा 'इंद्र' की इस स्थापना में दम नजर आता है कि 'जनगीत', 'नवगीत' और 'मंच-गीत' जैसे शब्दों से बेमानी वितंडावाद फैलता है। साथ ही नामवर सिंह का यह मानना बिल्कुल सही जान पड़ता है कि गीत, गीत है। मैं गीत के पहले 'नव' जैसा विशेषण लगाना जरूरी नहीं समझता। इसलिए नवगीत-जनगीत आंदोलन पर कोई टिप्पणी न करके श्रेष्ठ गीतों पर ही चर्चा की जाय तो ज्यादा अच्छा होगा लेकिन शर्त यह है कि समकालीन गीतों के आस्वाद और मूल्यांकन के लिए उन्हीं औजारों का उपयोग नहीं किया जाय, जो छायावादी-उत्तरछायावादी गीतों के लिए किए जाते हैं। साथ ही, तब गीत को नितांत निजी आत्मानुभूति की उपज भी नहीं माना जाय, बल्कि आत्मानुभूति की द्वंद्वात्मकता को शिद्दत से समझा जाय और विकसित दौर के गीतों की जाँच-पड़ताल विकसित कला-प्रतिमानों से की जाय, सदियों पुराने एवं घिसे-पिटे कला-प्रतिमानों से नहीं।

शंभुनाथ, ठाकुर प्रसाद से ज्यादा प्रौढ़ शैलेश पंडित के गीत

नवगीत के आरंभिक दौर में गीत की भाषा, भाव और संवेदना के धरातल पर जो परिवर्तन परिलक्षित हुए थे, वे लोकजीवन, लोकगीत और लोकभाषा के साथ संवेदनात्मक संबंध और आत्मीय संपर्क का नतीजा थे। वर्ष 1951 से 1955 तक लिखे ठाकुर प्रसाद सिंह के संथाली लोकगीत और लोकजीवन की सहज रागात्मकता और लयात्मक अनुगूँज से संवलित गीतों का संग्रह-रूप 'बंशी और मादल' का प्रकाशन वर्ष 1969 में हुआ; जबकि उसका एक संस्करण वर्ष 1960 में ही छप चुका था, जिसकी समीक्षा अज्ञेय और गिरिजा कुमार माथुर ने की थी और इस तथ्य का हवाला 'पाँच जोड़ बाँसुरी' में प्रकाशित लेख में ठाकुर प्रसाद सिंह ने स्वयं दिया है तथा शंभुनाथ सिंह के वर्ष 1953 में प्रकाशित 'दिवालोक' और वर्ष 1955 में प्रकाशित 'माध्यम मैं' में संग्रहीत लोक-चेतना से संपृक्त और लोकधुनों एवं छंदों पर आधरित गीतों ने गीत-रचना के लिए नया झरोखा खोल दिया था। यथा-किसके ये काँटे हैं/ किसके ये पात रे/ बैरी के काँटे हैं/ केले के पात रे/ बिहर रहा हिया, तुम कहाँ/ टेर रही प्रिया, तुम कहाँ। शंभुनाथ सिंह भाव और शिल्प के धातल पर, लोकलय और लोकसंवेदना के समाहार के विचार से, ठाकुर प्रसाद सिंह के 'बंशी और मादल' में संग्रहित गीत ने तत्कालीन गीत-रचना को अत्यंत ही समृद्धि प्रदान की।

यह सही है कि 'बंशी और मादल' के 'लोक-तत्त्व से गुंथे गीत की ऐसी सांगोपांग कृति जो अपने समय में एक घटना की तरह आकस्मिक रूप से आई, उसका आकलन और विश्लेषण सही रूप में नहीं हुआ या होने नहीं दिया गया। 'बंशी और मादल' के गीत देश के जिस भूभाग की मिट्टी से महकते हैं, चाहे वह संथाल की हो या बंगाल की, है तो इसी देश की लेकिन इतना तय है कि इन गीतों में लोकराग की लय ने कविताओं, कला, जीवन और समय (साहित्यिक भी) के साथ जोड़ा है और यह भी कि गीत की मनोलय से झरता हुआ जातीय भावबोध भारतीय चेतनता की समग्रता में इन गीतों के साथ धर-धर बहने लगता है जिसमें कवि अपने व्यक्तित्व का विसर्जन कर देता है। कवि की रचना और समाज के प्रति यह एकात्म अंतरंगता गीत को बहुत ताकतवर बना देती है, जो इसके पहले समग्र रूप में इतना ताकतवर नहीं था।' (दिनेश सिंह)

'बंशी और मादल' के जिस गीत और उस गीत के जिस स्थल की रागात्मक अनुभूति इसकी जान है, उसकी पहचान, सामाजिक स्थिति और सांस्कृतिक वास्तविकता की वस्तुगत जाँच आवश्यक है। आइए पहले गीत देखें। 'बासंती रात के निर्मल/ पल आखिरी/ बेसुध पल आखिरी/ विह्वल पल आखिरी/ पर्वत के पार से बजाते तुम बाँसुरी/ पाँच जोड़ बाँसुरी/ वंशी-स्वर उमड़-घुमड़ रो रहा/ मन उठ चलने को हो रहा/ धीरज की गाँठ खुली लो, लेकिन/ आधे अँचरे पर पिया सो रहा/ मन मेरा तोड़ रहा पाँसुरी/ पाँच जोड़ बाँसुरी।'

इस गीत के साथ अंतर्क्रिया करते हुए दिनेश सिंह इस निष्कर्ष पर पहुँचते है कि 'बंशी और मादल के गीतों को मात्र परकीय बोध के गीत मान लेना सरसरी नजर का कमाल हो सकता है। पर ऐसा मानना या परकीय बोध के दायरे में उन्हें घेरना उसके अर्थलय को सीमित करना है।'

अब प्रश्न उठता है कि किसी रचना का सबसे महत्त्वपूर्ण अंग क्या है - केवल अर्थलय या उसमें व्यक्त जीवन की वास्तविकता? किसी अप्रत्यक्ष प्रेमी के द्वारा बजाई वंशी के उमड़ते-घुमड़ते स्वर को सुनकर बासंती रात के आखिरी निर्मल, चंचल और विह्वल पल में अपने आधे आँचल पर दिन भर के कठिन श्रम से थके-माँदे पति को सोया छोड़कर अपने प्रेमी तक पहुँच जाने की आकुल मनोभावना अगर परकीय बोध नहीं है तो क्या केदारनाथ अग्रवाल के गीत 'माँझी, न बजाओ बंशी/ मेरा तन झूमता/ मेरा तन झूमता, तेरा तन झूमता/ मेरा तन तेरा तन एक बन झूमता' के अद्वैत प्रेमोल्लास में परकीय बोध है?

यह संथाल जीवन और संस्कृति के प्रतिकूल मध्यवर्गीय बोध की बेचैनी है। लोक संगीत और लोकलय के अत्यंत मार्मिक अनुगूँजों से सांद्र अभिव्यक्ति होने के बावजूद यह गीत उत्तर छायावादी दौर के अतृप्त प्रेम के दुःख, दर्द और वियोग की वेदना और मिलनोच्छवास की भावना की अभिव्यक्ति ही तो है।

केदारनाथ सिंह मानते हैं कि 'मोटे तौर पर लोकगीत का ढाँचा बहुत संक्षिप्त, स्वतःप्रेरित और लचीला होता है। इसके विपरीत साहित्यिक गीतों में प्रायः एक यत्नसाध्य नियंत्रण और एक कठोर कलात्मक साँचे (पैटर्न) का आग्रह पाया जाता है।'

इस लिहाज से ठाकुर प्रसाद सिंह के इस गीत के साथ अनुक्रिया की जाय, तो स्पष्ट दीख

जाएगा कि यह गीत लचीली एवं स्वतःप्रेरित लोकलय और सांस्कृतिक चेतना की उपज नहीं, प्रत्युत यत्नसाध्य नियंत्रण और कठोर कलात्मक साँचे की निष्पत्ति है। इसके बावजूद ठाकुर प्रसाद सिंह के लोकलयाश्रित गीत शंभुनाथ सिंह के लोकलयाश्रित गीतों से अधिक सफल गीत हैं।

शंभुनाथ सिंह के गीतों से अधिक कलात्मक गीत शैलेश पंडित के दिखलाई देते हैं- 'सात भाई-चंपा/ तुम पहले से झूलोगी/ फूलोगी सात-सात रंग/ छोटा बाजार से पायल चुन लाएगा/ मँझला रसगुल्ले के दोने/ सोने की डोर से बुने होंगे घर-बाहर/ सात-सात रंग के बिछौने/ सात भाई-चंपा/ तुम सपनों में खेलोगी/ जीतोगी सात-सात जंग।' इस गीत में आंतरिक कसाव और सामाजिक यथार्थ शंभुनाथ सिंह और ठाकुर प्रसाद सिंह के लोकगीताश्रित गीतों से अधिक प्रौढ़ है और यह अस्वाभाविक भी नहीं है; क्योंकि 'आरंभ में थोड़े से नए शब्दों या बिंबों की पूँजी पर खड़ी हुई इस नई चेतना ने बहुत जल्दी ही नई मंजिलों को पकड़ लिया। शब्द-प्रयोगों, बिंब-विधानों या वातावरण प्रधान विशेषताओं से नई गीत-रचना तेजी से आगे बढ़ गई है।' (ठाकुर प्रसाद सिंह)

ठाकुर प्रसाद सिंह के संथाल लोकजीवन और लोकलय से अनुगूँजित एक और गीत को ले -आछी के वन/ वन आछी के/ आछी के वन अगुवारे/ आछी के वन पिछुवारे/ आछी के वन पूरब के/ आछी के वन पच्छिमवारे/ महका मह-मह के रन-वन/ आछी के वन/ भोर हुई सपने-सा टूटा/ पथ मह-मह का पीछे छूटा/ अब कचकच धूप/ हवाएँ सन-सन।' आछी एक जंगली फूल का नाम है, जिसकी गंध बेहद कामोत्तेजक और मादक होती है, वन किसी संथाल घर के अगुवारे और पिछवारे, पूरब और पच्छिम भी यानी चारों ओर फैला है और जो मह-मह महक रहा है, उसकी मादक गंध से माती हवा कचकच धूप में सन-सन बह रही है। यह गहन रागानुभूति की, गहन संवेदना की, एक विशेष मनःस्थिति की रागात्मक आत्माभिव्यक्ति है। काशीनाथ सिंह की 'सुख' कहानी जैसी। चूँकि एक गीत में एक ही मनःस्थिति, विचार और अनुभूति की चरितार्थता होती है, इस लिहाज से यह गीत एक अच्छा गीत हो सकता है; किंतु, संथाल जाति की कठिन जीवन-स्थितियाँ, जीवन-संघर्ष और मुक्ति-संघर्ष का पूरे 'बंशी और मादल' के अधिकांश गीतों से नदारद होना इन प्रयोगशील गीतों की सीमा को भी संकेतित करता है।

स्पष्ट है कि यह गीत कुछ हद तक एक सफल, सुंदर, आकर्षक और मोहक प्रतीत हो सकता है; लेकिन इसमें वह जीवनी शक्ति नहीं है जो बहुजन को स्पंदित कर सके। केवल इंद्रियबोध को उद्भूत करना गीत का चरम लक्ष्य नहीं हो सकता; क्योंकि इंद्रियबोध अनुभूति की केवल पहली अवस्था है; इसके बाद उनकी मानसिक प्रतिक्रिया भावानुभूति की सृष्टि करती है जो अंत में चिंतन के आलोक से आलोकित हो उठती है। परंतु इंद्रियबोध को भाव और चिंतन की अवस्थाओं में ले जाने के लिए क्षणों के प्रवाह से गुजरना होता है। और क्षणजीवी लेखक ऐंद्रिय सुख के क्षणों से आगे बढ़ते ही नहीं और बढ़ते भी हैं तो मन-ही-मन उसी क्षण को जीते रहते हैं। (नामवर सिंह)

हर जागरुक लेखक अपने मन के माध्यम से उस मन के साथ जुड़े हुए सैकड़ों दूसरे मनों का उद्घाटन करता है; इस प्रकार वह अपने मन का उद्घाटन करते-करते उस युग के पूरे समाज के संघर्ष को खोलकर रख देता है। साथ ही, ठाकुर प्रसाद सिंह यह जानते ही होंगे कि लोक कलाओं में श्रमशील जीवन का सहज सौंदर्य होता है, विश्राम का जड़ाऊ सौंदर्य नहीं। जिस जीवन और परिवेश में लोक- कलाओं की रचना होती है, वह उनके बोध का स्वाभाविक सौंदर्य होता है।

लोकगीत की लय और धुनों के पूर्वापर कुछ गीत शंभूनाथ सिंह ने भी लिखे थे, जिनमें 'नवगीत' की पदचाप सुनी गई थी। यथा 'पिया न आए, आमों में/ आ गया टिकोरा री/ बँसवारी में मैना बोली/ पीपल पर कोयलिया/ आँगन की चंदन गछिया पर/ बोला कागा छलिया/ दूर किसी झुरमुट में बोला/ वन का मोरा री।'

इस गीत में अंतर्भुक्त लोकराग और लोकसंगीत ने एक नई ताजगी की सृष्टि की है, प्रयोग के नाम पर इन प्रवृत्तियों में लोकगीत के शरीर और अभिव्यक्ति-भंगिमा के अपहरण की बदौलत अपनी रचना में टटकापन लाने का प्रयास किया गया है, लेकिन गीत की वैचारिक अंतर्वस्तु में कोई बदलाव नहीं आया है। सच्चा बदलाव केवल भाषा-शिल्प के धरातल पर आया बदलाव ही नहीं होता, बल्कि वैचारिक अंतर्वस्तु में आए बदलाव का भी द्योतक होता है। परवर्ती दौर के रमेश रंजक, विजेंद्र अनिल और गोरख पांडेय ने भी अपनी गीत-रचना में लोकलय और लोकसंगीत का कलात्मक उपयोग किया है, साथ ही गीत की पूरी वैचारिक अंतर्वस्तु को बदलकर समसामयिक और आधुनिक बना दिया है। इन गीतकारों का रचनात्मक सरोकार लोकगीत की लय और धुनों को लेकर कोई प्रयोग करना भर नहीं है, अपितु समसामयिक यथार्थ को संवेदनशील ढंग से व्यक्त करने के लिए लोकगीत की लय और धुनों से सहारा लेना है ताकि यह जन-मन में घुल-मिल सके।

गोरख पांडेय का एक गीतांश देखिए - 'हिले-पहिल जब वोट माँगे अइलें त बोले लगलें ना/ तोहके खेतवा दिअइबो/ ओमें फसलि उगइबो/ बजड़ा के रोटिया देइ-देइ नूनवा/ सोचली कि अब त बदली कनूनवा/ अब जमींदरवा के पनही न सहबो/ अब न अकारथ बहे पाई खूनवा/ दूसरे चुनउआ में जब उपरइलें त बोले लगलें ना/ तोहके कुइयाँ खनइबो/ सब पिअसिया मेटइबो।' यह सिर्फ लोकगीत की लय और धुन का अपहरण नहीं है, न ही छठे दशक में शंभुनाथ सिंह और ठाकुर प्रसाद सिंह जैसा प्रयोगात्मक नवता लाने का प्रयास। यह तो गीत-रचना के क्षेत्र में एक नई रचना-दृष्टि का उदय है, लोकगीत के पुनःसंस्कार या पुनर्रचना का सकारात्मक अभियान।

जनगीत का नवगीत से अलग सौंदर्यशास्त्र

रमेश रंजक हिंदी जनगीत के शिखर गीतकारों में से एक हैं। वर्ष 1970 के बाद हिंदी नवगीत के यथास्थितिवादी रवैये, गहन निराशाबोध, मध्यवर्गीय ढुलमुलपन और पतनशील जीवन-दृष्टि के खिलाफ जब व्यापक जन-साधरण की असहमति, असंतोष, आक्रोश और प्रतिरोध की आवाज बुलंद की गयी थी तो इस दिशा में रमेश रंजक ने अग्रणी भूमिका निभायी थी तथा जनगीत का नवगीत से अलग सौंदर्यशास्त्र भी गढ़ा था। शंभु गुप्त की निगाह में 'कवि या कहानीकार को ज्यादा सचेत या चौकस नहीं होना चाहिए। थोड़ी-सी लापरवाही, थोड़ी-सी विस्मृति, थोड़ी-सी अबोधता या एक फिल्म का नाम लेकर कहूँ तो 'थोड़ी-सी बेवफाई' उसमें होनी चाहिए। यह ठीक है। यह हो सकती है; लेकिन इसके साथ-साथ यह भी जरूरी है कि उसमें थोड़ी-सी सामाजिकता, थोड़ी-सी प्रतिबद्धता, थोड़ी-सी बेचैनी और थोड़ी-सी ईमानदारी भी हो।'

'इधर की कविता में लोक के शब्द उसी तरह आ रहे हैं, जिस तरह लोक-जीवन और लोक आ रहा है क्योंकि सच्चा साहित्य अपनी प्रकृति में लोकधर्मी होता है। वह न तो लोक-जीवन की अवहेलना कर सकता है और न लोक-भाषा की अजस्त्र शक्ति को नजरअंदाज कर सकता है।' (कमला प्रसाद)

आजकल अक्सर लोग दो गीतकारों की रचनाओं में कुछ शब्द या शब्द-समूह की समानता देखते ही अनुकरण ढूँढ़ने लग जाते हैं जो एक नितांत गलत और खतरनाक प्रवृत्ति है। तब तो दुनिया का कोई भी कवि या रचनाकार पूर्ण मौलिक होगा ही नहीं क्योंकि उसके द्वारा प्रयोग में लाये गये सारे शब्द पहले ही प्रयोग में आ चुके होंगे।

संदेहरहित है कि गीत का सृजन-कर्म बेहद मुश्किल और पेंचीदा कला-कर्म है। मुश्किल और पेंचीदा तो हर प्रकार का सृजन-कर्म होता है, आसान रचना का उत्पादन होता है। यह बात हमेशा ध्यान में रखने योग्य है कि जो चीज जितनी बढ़िया होती है, उसकी त्रुटियाँ उतनी ही ज्यादा दिखायी देती हैं और उन्हें सुधरने की आवश्यकता भी उतनी ही अधिक होती है। त्रुटियाँ जब गुनाह की सरहद पार कर जायं तो बात चिंतनीय हो जाती है।

कमला प्रसाद जैसे दिग्भ्रमित लोग अगर समकालीन गीत की उपलब्धियों को उससे अंतरंग परिचय पाये बिना ही नकार देते हैं, तो अधिक चिंताजनक स्थिति नहीं होती, अधिक चिंताजनक स्थिति तो तब खड़ी हो जाती है, जब गीत के पक्ष में खड़े आलोचक और गीतकार भी, गीत की सकारात्मक उपलब्धियों को पहचानने से किनाराकशी कर लेते हैं।

वर्ष 1960 के बाद अब तक नवगीत की गंगा में बहुत पानी बह चुका है; लेकिन सारा पानी या गंगा में प्रवाहित होने वाले सभी पदार्थ मंदिर में चढ़ने लायक नहीं हैं, साफ जल के साथ ढेरों कूड़े-कचरे भी बहते रहते हैं और ये कूड़े-कचरे सड़कर गंगा के जल को प्रदूषित करते रहते हैं। इसलिए हमें नवगीत में मौजूद अंतर्विरोधों को नजरअंदाज नहीं करना चाहिए। ऐसा ही एक गीत बुद्धिनाथ मिश्र का है, जिसकी रचना आठवें दशक के आरंभ में, सितंबर, 1971 में हुई है। यह गीत इस बात का विरल उदाहरण है कि अपने रचना-काल से आज तक यह गीत कवि- सम्मेलन के मंचों पर सबसे सफल गीत है, श्रोता इसे बड़े प्यार से सुनते हैं लेकिन गुनते नहीं हैं। इसमें उन्हें रसानुभूति भी होती है परंतु थोड़ी देर ठहरकर इसमें व्यक्त विचार पर विचार करने की जहमत नहीं उठाते।

बुद्धिनाथ मिश्र इस गीत का पाठ अत्यंत ही मधुर स्वर में करते हैं, जिसकी मधुर स्वर-लहरी में बहकर श्रोता उसमें मौजूद वैचारिक अंतर्विरोध और तथ्यगत त्रुटियों पर ध्यान नहीं दे पाते। बुद्धिनाथ मिश्र के इस गीत की टेक की पंक्ति है - 'एक बार और जाल/ फेंक रे मछेरे !/ जाने किस मछली में/ बंधन की चाह हो।' गीत-रचना में टेक का स्थान बहुत ही ऊंचा होता है। इस गीत की टेक का सामान्य अर्थ यही है कि कवि एक मछेरे से नदी, झील, पोखर या समुद्र में जाल फेंकने के लिए आग्रह करता प्रतीत होता है ताकि जिस मछली में बंधन की चाह है, वह आकर स्वतः जाल में फँस जायेगी।

गौरतलब है कि चाह किसी भी प्राणी या मनुष्य में मुक्ति की होती है, बंधन की हरगिज नहीं; अध्यात्म में भी सारा उपक्रम देह के बंधन से आत्मा का मुक्ति के लिए ही होता है अर्थात इस गीत की टेक ही वैचारिक अंतर्विरोध और अर्थ- विपर्यय की गिरफ्त में है। गीत में कुल चार बंद हैं। इन चारों बंदों में बहुत कुछ है - सपनों की ओस गुँथती कुश की नोक है, हर दर्पण में उभरा एक दिवालोक है, रेत के घरौंदे में सीप के बसेरे हैं, पुरइन पात है, पूरी बरसात है, चंदा के इर्द-गिर्द मेघों का घेरा है, गुफाओं में गूँजती पिछली सौगंध है, कुंकुम-सी बिखरी भोरहरी लाज है, और भी बहुत कुछ है; अगर कुछ नहीं है तो मछली, मछेरे, जाल और नदी, झील, पोखर, समुद्र नहीं हैं। पूरे गीत में अर्थ-संहति नहीं है, सभी बंदों के अर्थों में तार्किक अन्विति नहीं है। सवाल है कि गीत में व्यक्त अनुभूतियों और भाव- श्रृखला में कोई अर्थ-संहति होती है या नहीं, क्या गीत केवल खूबसूरत, रुमानी और मसृण शब्दों का जखीरा भर होता है?

इस गीत के अंतिम बंद में एक पंक्ति है -

बंसी की/ डोर बहुत काँप रही आज है।' एक सजग पाठक के मन में इस प्रश्न का उठना गैरलाजमी नहीं होगा कि जिस स्थान पर मछली को फँसाने के लिए जाल डाला जा रहा हो, वहाँ बंसी कहाँ से आ गयी?

मेरे विचार से हर रचनाकार में समाज और विचार के प्रति थोड़ी-सी प्रतिबद्धता, ईमानदारी और बेचैनी नहीं, प्रत्युत पूरी प्रतिबद्धता, ईमानदारी और बेचैनी होनी चाहिए। अधजल गगरी छलकत जाय। आधी-अधूरी प्रतिबद्धता, ईमानदारी और बेचैनी कितनी खतरनाक होती है, रचना को वे कहाँ-से-कहाँ पहुँचा देती हैं, इसे समझने के लिए रमेश रंजक जैसे समर्थ जनगीतकार के 'इतिहास दुबारा लिखो' के एक गीत की कुछ पंक्तियों के साथ वैचारिक मुठभेड़ कर सकते हैं। गीत की पंक्तियाँ इस प्रकार हैं - 'पास नहीं है बैल, बदरा पानी दे/ जालिम है ट्युवैल, बदरा पानी दे/. .....इतने ठन-गन दिखा न भाई/ खूबसूरत औरत की नाईं/ तू भी हुआ रखैल, बदरा पानी दे।'

इस गीत की इस पूरी पंक्ति 'खूबसूरत औरत की नाई तू भी हुआ रखैल' पर ध्यान केन्द्रित करें तो साफ पता चलेगा कि रमेश रंजक की नजर में दुनिया भर की सारी खूबसूरत औरतें घरेलू और निष्ठावान पत्नी नहीं, स्वार्थी, लालची और अविश्वसनीय रखैलें होती हैं। यह विचार जनवादी तो क्या, पूँजीवादी भी नहीं है; यह तो घोर सामंतवादी और पुरुषवर्चस्ववादी दृष्टिकोण है। हालाँकि रमेश रंजक की यह रचनात्मक नीयत नहीं थी। अपनी रचना के प्रति लापरवाह और गैरजिम्मेदार होने से इस प्रकार के वैचारिक अंतर्विरोध का, रचनाकार की इच्छा के विरुद्ध उत्पन्न हो जाना अस्वाभाविक नहीं है।

रमेश रंजक के एक जनगीत-संग्रह का नाम 'मिट्टी बोलती है' है। इस संग्रह के शीर्षक गीत की कुछ पंक्तियाँ या टेक को भी देखा जा सकता है - 'रहट जब चकरोड पर आ जाय/ और सूखी रोटियाँ खा जाय/ मिट्टी बोलती है।' इस टेक में 'मिट्टी बोलती है' वक्ता है। सवाल है कि सूखी रोटियाँ कौन खा रहा है? उत्पादन का सरल औजार यानी रहट या शोषणमूलक समाज-व्यवस्था? सर्वविदित है कि उत्पादन के औजारों का विकास मनुष्य के विकास का द्योतक है क्योंकि 'मनुष्य के अभाव में औजारों

आलोचकों की निगाह से ओझल कृष्ण कल्पित

साठोत्तरी कविता में धूमिल ने मोचीराम के जीवन-संघर्ष और उसकी त्रासद विडंबनाओं का पदार्फाश करनेवाली कविता 'मोचीराम' लिखी तो उन्हें उनके समकालीन कवियों और आलोचकों ने हाथोहाथ उठा लिया। उसी मोचीराम के जीवन-संघर्ष और जीवन की विडंबनाओं को बेहद संवेदनशील ढंग से उद्घाटित करनेवाला गीत जब कृष्ण कल्पित 'मोची का गीत' लिखते हैं, तो यह गीत, गीत के पक्ष में खड़े आलोचकों और गीतकारों की निगाह से भी ओझल हो जाता है - 'जगन राम मोची ने/ काट लिए नुक्कड़ पे/ घिसे हुए जूते-सा दिन/ बार-बार चुभती है/ आँतों में गड़ी हुई कील/ निकल नहीं पाती है/ आगे को मुड़ी हुई कील/ गाँठ लिया चप्पल में/ जंग लगे सूए से/ कसे हुए सूते-सा दिन।' इसी प्रकार आज के दलित-विमर्श के दौर में जब श्यामलाल 'शमी' दलित-चेतना से लैस गीत लिखते हैं, तो उनकी सुध लेनेवाला भी कोई दिखाई नहीं देता - 'एक गरीब दलित की बेटी/ उठा ले गए गुंडे/ जोड़े हाथ, गिड़गिड़ाई/ पर, तिल भर माथ न ठनका/ दुराचार फिर किया कि जैसे/ पुश्तैनी हक उनका/ गाड़ दिए असहाय देह पर/ दुष्कर्मों के झंडे/.....हुई शिकायत, 'जबरों' ने/ धन-बल से साक्ष्य मिटाया/ पंचायत, थाने, न्यायालय/ न्याय कहाँ मिल पाया/ भस्म हुई अपमान चिता में/ जला लकड़ियाँ-कंडे।'

'पान की आँखों में धान की क्यारी' जैसी 'बीस साल की दुबली-पतली देह वाली तन्वंगी युवा-किशोरी' 'रामधनी की दुलहिन' के अनिंद्य सौंदर्य पर फिदा नवगीत के सुन्न कानों तक दलित स्त्री के साथ किए गए बलात्कार की पीड़ा व अमानवीय चीख-पुकार भला कैसे पहुँच सकती है? उसके फिदायिन उन्माद में बीस साल की शादीशुदा रामधनी की दुलहिन किशोरी दिखाई देती है; क्योंकि एक अविकसित किशोरी के साथ अमानुषिक मानसिक व्यभिचार में जो आनंद है, वह एक युवा स्त्री में कैसे मिल सकता है?

वह तो सारी सामाजिक, राजनीतिक और सांस्कृतिक अराजकता और अपराधीकरण का स्रोत दलित और पिछड़ों का राजसत्ता और ऊंचे पदों पर प्रवेश या पहुँच को मानता है, तभी तो एक सवर्ण और सामंती सोच वाली भाभी अपने देवर को बेहद आत्मीय पत्र में भी लिखती है कि 'रोज-रोज सुनती हूँ, गोली चलती इनवरसीटी में/ ईंट चढ़ी है मोरी की, जब से चौबारे देवर जी।' (कैलाश गौतम) इस गीत से ध्वनित होता है कि यूनिवर्सिटी में पनप रही गुंडागर्दी और अपराधीकरण के विकास का आधार पूँजीवादी अमानवीयता, संवेदनहीनता एवं लम्पट चरित्र वाले निम्नपूँजीवादी सोच नहीं, वरन दलित और पिछड़े वर्ग के लोगों का बड़े-बड़े ओहदों पर काबिज होना, सवर्ण आभिजात्य लोगों के साथ एक ही विश्वविद्यालय में पढ़ना-लिखना और सक्रिय राजनीति में बराबर की भागीदारी है। जिसे मोरी की ईंट बनकर नाली में रहना था, वह अगर मंदिर के चौबारे पर चढ़ जायेगा तो आभिजात्य सवर्ण लोग गोली-बंदूक की भाषा बोलेंगे ही। यह नवगीत का जनवाद है।

महानगरों में कवि को कचोटतीं गांव की यादें

रोजी-रोटी या रोजगार की तलाश में गाँवों और कस्बों से आए रचनाकारों, गीतकारों में समाज के काव्यात्मक संबंध और पारिवारिक रिश्ते-नातों की मिठास नगरों-महानगरों में कष्टमय जीवन जीने के उपरांत भी पूरी तरह निःशेष नहीं हो जाती, उनकी सहजता और निश्छलता महानगरीय यांत्रिकता के क्रूर शिकंजे में फँस कर भी समाप्त नहीं होती, वह अंतःसलिला धारा की तरह विद्यमान रहती है। यह अलग बात है कि महानगरीय जीवन की आपाधापी स्वार्थपरता और अमानवीय संबंधहीनता के चंगुल में फँसकर कुछ देर के लिए गाँव में रह रहे परिवार के सदस्यों को विस्मृत कर देता है, मगर इस विस्मृति के क्षणों में भी गाँव की याद उसे बराबर कचोटती रहती है - 'मां सिरहाने बैठी होगी/ बापू लिखता होगा खत/ काफी हाउस में बैठा मैं/ सोचा करता हूँ/ छिपकर बीड़ी पीता होगा/ मेरा छोटा भाई/ फटा ओढ़ना सीती होगी/ 'बनी-ठनी' भौजाई/ दो बीघा बंजर धरती को/ जोत रहे होंगे भैया/ सिगरेटों का कश लेता मैं/ सोचा करता हूँ/ इस बरखा में शायद उसने/ तुलसी बोई होगी/ आते-जाते दाल पकाते/ छिप-छिप रोई होगी/ सोफे पर लेटा-लेटा मैं/ सोचा करता हूँ।' (कृष्ण कल्पित) और, गाँव में बैठी दुःख-तकलीफ और भयंकर गरीबी एवं बीमारी से संत्रस्त माताएँ शहर में अपने कई कमाऊ और सुखी-संपन्न बेटे की उपेक्षा को भी नजरअंदाज कर देती है और अपने मन की पीड़ा को दबाकर दूसरों के सामने अपने पुत्रों की प्रशंसा करने में बाज नहीं आती।

माँ आखिर माँ होती है। जनार्दन झा द्विज ने ऐसी ही माँ के लिए लिखा है कि 'बेटा पिशाच बनकर जो माँ का ले काट कलेजा भी निकाल/ तो भी उस कटे कलेजे से स्वर निकलेगा खुश रहो लाल।' ऐसी सहनशील मां का एक बेहद मार्मिक और संवेदनशील चित्र राजेंद्र गौतम के इस गीत 'वृद्धा पुराण' में है - 'मझले की चिट्ठी आई है/ ओ मितरी की माँ/ परदेसों में जाकर भी वह/ मुझको कब भूला/ पर बच्चों की नहीं छुट्टियाँ/ आना मुश्किल है/ वह तो मुझे बुला ही लेता/ अपने क्वाटर पर/ अरी सोच कब लगता मेरा/ दिल्ली में दिल है/ भेजेगा मेरी खाँसी की/ जल्दी यहीं दवा/ मेरे बड़के का भी खत री/ परसों ही आया/ तू ही कह किसके होते हैं/ इतने अच्छे लाल/ उसे शहर में मोटर बंगला/ सारे ठाट मिले/ गाँव नहीं पर अब तक भूला/ आएगा इस साल/ टूटा छप्पर करवा देगा/ अबकी बार नया/ एक बात पर मितरी की माँ/ समझ नहीं आती/ क्यों सब बड़के, छुटके, मँझले/ पहुँचे देस-बिदेस/ लठिया, खटिया, राख, चिलंबी/ अपने नाम लिखे/ चिट्ठी-पत्रा- तार घूमते/ ले घर-घर 'संदेस'/ यहाँ मोतियाबिंद बचा/ या गठिया और दमा।'

गाँव में नितांत दयनीय जिंदगी जीने के लिए विवश माताएँ अपने शहरी और कमाऊ पुत्रों की व्यक्तिवादी स्वार्थपरता को समझते हुए भी अपनी ममता को बहलाने का प्रयास कर रही हैं। प्रेम, प्रकृति और सौंदर्य गीत-रचना की सर्वाधिक उर्वर भूमि हैं। कदाचित इसीलिए प्रेम, प्रकृति और सौंदर्य को विषय बनाकर दुनिया भर की तमाम भाषाओं में सर्वाधिक गीत लिखे गए हैं। 'शब्द और कर्म' में समकालीन कविता की वर्तमान स्थिति पर चिंता व्यक्त करते हुए मैनेजर पांडेय ने लिखा है कि 'समकालीन कविता की विषय-वस्तु के विस्तार को देखकर संतोष होता है; लेकिन प्रकृति, प्रेम और सौंदर्य की कविताओं का अभाव खटकता है। कुछ लोग समझते हैं कि जनवादी कविता में प्रकृति, प्रेम और सौंदर्य के लिए कोई जगह नहीं है।.....यह ठीक है कि हिंदी में व्यक्तिवादी और अराजकतावादी कवियों ने प्रेम और सौंदर्य की कविता के नाम पर अपनी कुंठा, मानसिक विकृति और कामुकता का ऐसा प्रदर्शन किया है, जहाँ आदमी और जानवर का फर्क मिट गया लगता है। अराजकतावादियों के हाथों में पड़कर ये विषय इतने बदनाम हो गए हैं कि कोई भी जनवादी कवि इधर कदम बढ़ाने से डरता है; लेकिन अब इस बात की जरूरत है कि साहस और संयम के साथ आगे बढ़कर प्रकृति, प्रेम और सौंदर्य के मानवीय रूप की अभिव्यक्ति कविता में की जाय।' समकालीन गीतों में भी प्रकृति, प्रेम और सौंदर्य के मानवीय रूप की अभिव्यक्ति का अभाव अब खलने लगा है। मैनेजर पांडेय की सलाह मानकर समकालीन गीतकारों को भी इस दिशा में कदम बढ़ाना चाहिए।

इस नजर से देखें तो उदय शंकर सिंह उदय की यह गीत-रचना इस पहलकदमी का एक

उदाहरण बन सकती है - 'साड़ियाँ तुम पर/ जँचेंगी/ हरे पतले पाढ़ वाली/ रंग मूँगा सिल्क/ कत्थई रोशनी देती/ और आँचर में उगी/ कुछ तितलियाँ सेतीं/ धरियाँ तुम पर/ फबेंगी/ वह खिले कचनार वाली....और वह झूमर/ माँ ने थी दी मुँह-दिखाई/ जिसकी जगमग जोत में/ तुम थी नहाई/ बिजलियाँ तुमसे/ तिरेंगी/ उस क्षितिज के पार वाली अथवा 'दो दिन से उनसे-/ फिर बोलचाल बंद है/ ऊपर है खामोशी/ भीतर हलचल है/ लगता है बरसों-सा/ एक-एक पल है/ बंध नहीं जिसमें/ ऐसा यह बंध है/...झूठी है तनातनी/ झूठी तकरार है/ ऊपर है रेत मगर/ भीतर जल-धर है/ इस झूठेपन में भी/ जीवन की गंध है।

'स्वतंत्रता के पूर्व की गीत-कविता काफी समृद्ध है। वह कविता है, गीत उसका एक रूप है। आजादी के बाद की सामाजिक परिस्थितियों के अंतर्विरोधों की पकड़ गीतकारों में कमजोर होती गई। महत्वपूर्ण कवियों ने गीत लिखना कम किया। समाज की जटिलताओं को व्यक्त करने की क्षमता गीतों में नहीं दीखी, इसलिए आज कविता के मूल्यांकन का साक्ष्य गीतों में नहीं दीखता।' कमला प्रसाद का यह बयान एक अधकचरी समझवाले और समकालीन गीत के मौजूदा रचना-संसार से पूरी तरह नावाकिफ आदमी का बयान लगता है। वास्तविकता तो यह है कि आज समकालीन गीतों में ग्राम्य-जीवन, मजदूर, किसान, शोषण, दमन, बाजारवाद, भूमंडलीकरण, उदारीकरण, उपभोक्तावाद, सांप्रदायिकता-विरोध, आतंकवाद-विरोध, दलित चेतना, स्त्री-विमर्श जैसी आज की तमाम ज्वलंत समस्याओं की जटिल अनुभूतियों की अभिव्यक्ति समकालीन गीतों में सफलतापूर्वक हो रही है। इसीलिए मैनेजर पांडेय की निगाह में 'नवगीत और जनगीतों में समकालीन समस्याओं से साक्षात्कार की चिंता है। इनमें सामाजिक संवेदनशीलता के विभिन्न पक्षों की अभिव्यक्ति और जन जीवन के भीतर व्यक्ति मन के अंतर्द्वन्द्वों की पहचान की कोशिश भी है। इसलिए उनमें एक सहृदय कवि की सहज बौद्धिकता की चमक भी है, जो पाठकों और श्रोताओं को प्रभावित भी करती है।'

और, शिव कुमार मिश्र मानते हैं कि समकालीन गीत 'आज किसी भावुक मन की अभिव्यक्ति भर या गाने गुनगुनाने भर की चीज न रहकर समय की विसंगतियों से सीधी आँख मिलाते हुए कविता और आदमीयत को बनाए और बचाए रखने की मुहिम में अपनी गीतात्मक धुरी पर संयत है, और किसी से कमतर नहीं है। जीवन का जो तमाम-कुछ शुभ और सुंदर, समय के क्रूर जबड़े का हिस्सा बन चुका है। वे चाहे जातीय स्मृतियाँ हों, संचित जीवन-मूल्य हों, परंपरिक नाते-रिश्ते की उष्मा हो, लोक और लोकजीवन की छवियाँ हों, शब्द, स्पर्श, रूप, रस और गंध के बारीक इंद्रिय-संवेदन हों, नवगीत ने उसको बचाए रखने का बीड़ा उठाया है।'

भरत सिंह का निष्कर्ष है कि 'मुक्त बाजार-व्यवस्था, उदारीकरण, निजीकरण, भूमंडलीकरण, पेटेंटीकरण, कमजोर तबकों को दी जा रही सहायता-राशि की समाप्ति, विदेशी आयातों का मुक्तागमन और इसके साथ-साथ बेकारी, अशिक्षा, भूख, गरीबी, महँगाई, बढ़ती आबादी, जानलेवा बीमारियों का आयात, आतंकवाद, असुरक्षा, अपसंस्कृति, विदेशी मुद्रा-भंडार के नाम पर कर्ज का पहाड़, जाति, धर्म, क्षेत्र के मिथ्या भेदों-उपभेदों को बढ़ावा, आत्महत्या का सैलाब, स्त्री को यौन-वस्तु में बदल डालना, प्राकृतिक ही नहीं, मानसिक, बौद्धिक, सांस्कृतिक प्रदूषण का बढ़ते जाना, अमानवीयकरण, पाश्वीकरण, क्रूरता, विवेकहीन हिंसा, दिशाहीन युवा पीढ़ी का अपराध और नशे में गर्क होते चला जाना, और यौनाचार से ग्रस्त होते जाना आदि कारण हैं, जो गैट-डंकल की कोख से बहुत तेजी के साथ रक्तबीज राक्षस शिशुओं की तरह उग रहे हैं। आज के गीतकार इन सब पर दृष्टिपात करते हुए मजदूरी का कम होना, प्रकृति के पानी पर पाबंदी लगाकर बहुराष्ट्रीय कंपनियों द्वारा तैयार बोतलबंद पानी पीने पर लोगों को मजबूर करना, माँ के दूध पर प्रतिबंध, कजरी, बाउल, फाग को अपसंस्कृति बताकर उसे खत्म करना, किसान अपना बीज नहीं रख सकते, अपनी तुलसी, हल्दी, नीम, आँवला सब साम्राज्यवादियों के चंगुल में होंगे आदि मुद्दे पर खुलकर बोले हैं।' अभिप्राय है कि समकालीन गीतों में आज के मनुष्यों के जीवन की तमाम सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक और सांस्कृतिक जटिलताओं की उसकी समग्रता में सफल अभिव्यक्ति हो रही है, जरूरत है, पूर्वग्रहमुक्त होकर इसे देखने और समझने की।

की कोई सत्ता नहीं है और औजारों के अभाव में मनुष्य की कल्पना भी नहीं की जा सकती।

वस्तुतः औजार और मनुष्य साथ ही सामने आये और दोनों घनिष्ठ रूप से एक-दूसरे से संबद्ध हैं।' (अर्न्स्ट फिशर) मनुष्यों के द्वारा मनुष्यों के शोषण, दमन और उत्पीड़न की प्रमुख वजह उत्पादन के औजारों का विकास नहीं, अपितु निजी स्वामित्व पर आधरित विनिमय-प्रणाली और शोषणमूलक समाज-व्यवस्था में संनिहित है। श्रमजीवियों का हक (रोटियाँ) उत्पादन के विकसित उपकरण नहीं पचाते, वरन् उसे शोषक-शासक वर्ग की संश्रयकारी एकता पचाती है। इसलिए उत्पादन के उपकरणों के विकास का प्रतिरोध मनुष्यों के विकास के प्रतिरोध का ही सूचक माना जायेगा। स्पष्ट है कि रमेश रंजक अपनी गीत-रचना के दौरान शब्दों के सटीक प्रयोग के प्रति असावधान रहे हैं। गीतकारों को अपने शब्द-प्रयोग के प्रति सतर्क रहना चाहिए।

हिंदी की गीतकार शांति सुमन ने अपने गीतों में मैथिली लोकभाषा के शब्दों, लोकोक्तियों, लोकगीत की धुनों व छंदों का कलात्मक इस्तेमाल करने का प्रयत्न किया है। उनके इस सार्थक प्रयास के मद्देनजर ही मैनेजर पाण्डेय इस निष्कर्ष पर पहुँच जाते हैं कि शांति सुमन 'नयी चेतना को लोकगीत के साँचे में ढालकर मानवीय करुणा और शोषित-पीड़ित जनता की एकता और सहानुभूति और पीड़ा के गीत' लिखने में सफल रही हैं। पाण्डेय जी ने इस बात की छान-बीन करने की जहमत नहीं उठायी कि क्या शांति सुमन को लोक-जीवन, लोक-संस्कृति और लोक-व्यवहार की संवेदनात्मक जानकारी है या उनकी जानकारी किताबी है?

'नयी चेतना को लोकगीत के साँचे में ढालकर मानवीय करुणा और शोषित पीड़ित जनता की एकता और सहानुभूति और पीड़ा के गीत' लिखनेवाली शांति सुमन को संभवतः ग्राम्य जीवन, ग्रामीण प्राकृतिक परिवेश और गाँवों में किस मौसम में कौन-सी फसल की बुआई या कटाई होती है इसका व्यावहारिक ज्ञान नहीं है अन्यथा वे ये नहीं लिखती कि 'काटेंगे खेत हुई जनवरी/ बीतेगी कैसे अब यह घड़ी/ चलो कहीं जा कीमत बूझें/ हँसी और नींद हम खरीदें।' उन्हें शायद नहीं पता है कि जनवरी महीने में भारत के किसी जनपद में मुख्य फसल की कटाई प्रारंभ होने वाली नहीं होती है; क्योंकि धन की फसल तो कट चुकी होती है और रबी-फसल की अभी बुआई-कार्य भी ठीक से संपन्न नहीं हुआ होता है।

'बिना गाँव का जीवन जिये इन छोटी-छोटी बातों का अनुभव नहीं हो सकता जैसे कश्मीर को आँखों से देखकर और किताबों में पढ़कर जब लिखा जायेगा तो उसके चित्राण में जमीन-आसमान का अंतर होगा।' (शांति सुमन) गाँव के जीवन को किताबों में पढ़कर नहीं, प्रत्युत अपनी संवेदना की आँख से देखकर और जीकर ही उन्होंने एक गीत लिखा है, जिसकी कुछ पंक्तियाँ यहाँ द्रष्टव्य हैं - 'यह भी हुआ भला/ कथरी ओढ़े तालमखाने/ चुनती शकुंतला/ कंधे तक डूबी/ सुजनी की देह गड़े काँटे/ कोड़े-से बरसे दिन/ जमा करें किस-किस खाते/ अँधियारी रतनार प्रतीक्षा/ बुनती चंद्रकला।' इस गीत में एक निम्नवर्गीय ग्राम्यबाला द्वारा कथरी ओढ़कर तालमखाने चुनने या बीनने का चित्रा खींचा गया है। तालमखाने की खेती गहरे (गले तक डूबने भर) पानी में होती है, फिर शकुंतला कथरी ओढ़कर तालमखाने कैसे चुनती है?

तर्क के लिए हम मान ले सकते हैं कि वह तालमखाने बीनती या तोड़ती नहीं है, जमीन पर ही चुनती है। लेकिन अगली पंक्ति में ही इस तर्क की पूरी हवा निकल जाती है क्योंकि वहाँ 'कंधे तक डूबी' पदबंध का प्रयोग हुआ है। इसी संदर्भ में एक बात और। गीत की पहली पंक्ति (टेक) में शकुंतला कथरी ओढ़े हुए है, दूसरी पंक्ति में ही कथरी सुजनी में तब्दील हो जाती है। क्या कथरी और सुजनी पर्यायवाची शब्द हैं? 'बृहत् हिंदीकोश', ज्ञानमंडल लिमिटेड, वाराणसी के अनुसार कथरी का शाब्दिक अर्थ 'चीथड़े जोड़कर बनाया हुआ ओढ़ना-बिछौना' (गुदड़ी) और सुजनी का शाब्दिक अर्थ 'कई तह कपड़े को काटकर और ऊपर से सूई से बारीक काम करके बनाया हुआ बिछौना' है। हालाँकि कथरी और सुजनी दोनों का निर्माण पुराने कपड़ों को जोड़कर किया जाता है तथा सुजनी कथरी की तुलना में काफी भारी होती है।

वर्ष 1970 के आस-पास रवींद्र भ्रमर का गीत प्रकाशित होता है कि 'मछली बोली/ सुन मछुए/ मत फेंक मोह का जाल', सितंबर 1971 में बुद्धिनाथ मिश्र लिखते हैं कि 'एक बार जाल और फेंक रे मछेरे/ जाने किस मछली में बंधन की चाह हो' और इसके आस-पास ही शांति सुमन का गीत आता है - 'फँसी नहीं मछली/ जाल फेंकता रहा मछेरा।' इन तीनों गीतों में मछेरा (मछुए), मछली, जाल और फेंकना क्रिया की उपस्थिति दर्ज है। तो क्या ये एक-दूसरे की नकल में लिखे गये हैं? जाहिर है कि कुछ शब्द या शब्द-समूहों की समानता के आधर पर ऐसा कहना गुनाह है। दरअसल शब्द या शब्द-समूह के अलावा भाव-संहति, लय-संरचना, छंद-विन्यास, अर्थ-निष्पत्ति और वैचारिक अंतर्वस्तु में अगर असमानता है तो उसमें प्रभाव ढूँढा जा सकता है अन्यथा ऐसा करना सरासर गलत होगा और रचनाकारों के साथ अन्याय भी।

कोई लेखक (गीतकार) अगर सावन को ऋतु कहता है तो उसे हम त्रुटि की संज्ञा देंगे लेकिन वही लेखक जब नीम की निबौली के पकने से सावन के आने का संदेश पाने लगता है तो त्रुटि गुनाह में तब्दील हो जाती है क्योंकि नीम की निबौली तो पककर सावन आने के पहले ही (आषाढ़ महीने में) झड़ चुकी होती है - 'नीम की निबौली पक्की/ सावन की ऋतु आयी रे।' (सर्वेश्वर दयाल सक्सेना, पाँच जोड़ बाँसुरी, पृष्ठ-71) इसी प्रकार किसी कवि को कनेर का फूल उजला दिखायी दे जाय तो गनीमत है क्योंकि कनेर की एक प्रजाति के फूल उजले भी होते हैं परंतु किसी गीतकार को फूले हुए पलाश पीले दिखने लगें तो यह गुनाह ही माना जायेगा - 'फूलते पीले पलाशों में/ काँपते हैं खुशबुओं के चाव।' (शांति सुमनः पंख-पंख आसमान, पृष्ठ-29) समकालीन गीत-रचना को जितना जल्द इस किस्म के नामाकूल गुनाहों से निजात मिलेगी, उसके स्वास्थ्य के लिए हितकर होगा और तब गीत अधिक विश्वसनीय, वस्तुपरक, अर्थपूर्ण और प्रभावशाली दिखायी देंगे।

गीत के रूढ़ ढाँचे-खाँचे ढहाने वाले
जन-गण-मन के कवि राम सेंगर

पागल होने से अच्छा है लिखते-लिखते मर जाना

राम सेंगर समाज के रिसते घावों और जनविरोधी विडम्बनाओं के बीच अस्तित्वरक्षा के लिये संघर्ष करते आम-आदमी में अपना कथ्य ढूँढते हैं, गीत के रूढ़ ढाँचों-खाँचों को तोड़ते हुए कविता के नैसर्गिक कहन का विकास करते हैं, जो हिन्दी नवगीत में सबसे अलग है। वह छन्द के बंधन को तोड़ते नहीं, ढीले कर देते हैं, निर्द्वन्द्व भाव-प्रक्षेप और प्रयोग के लिए किसी आलोचना की परवाह नहीं करते हैं। किसी भी हिंसा का प्रखर प्रतिवाद करते उनके नवगीत आम जन को भय मुक्ति के लिए, छद्म और मक्कारी के विरुद्ध लड़ने की शक्ति प्रदान करते हैं। समकालीन समाज की तिलमिलाहट और प्रश्नाकुलता उनकी रचनाओं में एक आईने की तरह समुपस्थित होती है। उनकी कविताओं का मूल स्वर समझना आसान नहीं। जिन्दगी के लिए नई सुबह की प्रतीक्षा करतीं उनकी कविताएँ पतझर की मनहूसियत के आगे नई कोपलों का स्निग्ध रंग बिखेरना चाहती हैं। कविता से ऊबे पाठकों को उन्हीं के अनुभव सौंपकर विचलित करने की शक्ति से सम्पन्न उनकी कविताएँ हाथ पर हाथ धरे बैठे रहने के विरुद्ध एक समरलोक रचती हैं।

बुझे चूल्हे के लिये ईंधन जुटाने में
रोज सूरज डूब जाता है,
सांटियों से मारता हमें कोई,
हैं उसे पहचान कर भी चुप,
चीख का कोरस उठा नेपथ्य से,
पर काँच घर की बत्तियाँ हैं घुप,
इस अँधेरे में किरण की टोह लें कब तक,

डॉ. शंभुनाथ सिंह के साथ इस तरह आया 'नवगीत दशक' : राम सेंगर

डॉ. शंभुनाथ सिंह और उनकी नवगीत दशक योजना से जुड़ने के दौरान वर्ष 1980 में रेलवे बोर्ड ने उन्हें डीएलडब्ल्यू वाराणसी के एक भव्य आयोजन में काव्य पाठ के लिए बुलवाया था। डॉ. शंभुनाथ सिंह उन्हें सुनकर गद्गद थे। अगली सुबह उन्होंने अपने आवास पर बुलाया। क्षेमजी और सुरेश व्यथित वहाँ पहले से थे। डॉ.शंभुनाथ सिंह ने मेरे दर्जनभर नवगीत रिकार्ड किये, बार-बार सुने। तभी वे 1962 की नवगीत दशक की धूल खायी एक पुरानी योजना की फाइल भीतर से ढूंढ लाये। बताया कि किस तरह उन्होंने 1962 में नवगीत दशक नाम से एक समवेत संकलन निकालने की योजना बनायी थी, जिसमें तब की योजनानुसार जो दस कवि चुने गये थे वे - शंभुनाथ सिंह, ठाकुर प्रसाद सिंह, उमाकान्त मालवीय, माहेश्वर तिवारी, रामचन्द्र चन्द्रभूषण, देवेन्द्र कुमार (बंगाली), शलभ श्रीरामसिंह, वीरेन्द्र मिश्र, महेन्द्र शंकर, मणिमधुकर थे।

नवगीत में इधर आये बदलाव को वे रेखांकित करना चाहते हैं, लिहाजा वे अंतिम चार कवियों को बदल कर उनके स्थान पर नये चार कवियों की तलाश में हैं। कुछ और वृहद रूप देकर वे इस योजना को नये सिरे से शुरू करना चाहते हैं। चचार्यें हुईं और अन्ततः नईम, भगवान स्वरूप सरस, ओम प्रभाकर और शिव बहादुर सिंह भदौरिया को पहले दशक में लिया जाना सुनिश्चित हो गया। कुछ और नाम छूट रहे थे तो दूसरा खण्ड निकालने की भी बात आयी। फिर सूचियां बनीं। एक सूची शंभुनाथ सिंह ने बनायी और एक मैंने। मिलान हुआ। काट-छाँट हुई और अन्ततः दूसरे खण्ड के लिए दस कवि और चुन लिए गए। मेरी सूची के रमेश रंजक, शलभ श्रीराम सिंह, मुकुट बिहारी सरोज और कैलाश गौतम को डॉ. साहब ने निहायत हलके तर्क देकर सिरे से खारिज कर दिया। देवेन्द्र शर्मा इन्द्र और सूर्यभानु गुप्त के नाम पर सहमति तो जतायी, लेकिन बड़ी ना-नुकर के बाद (बाद में सूर्यभानु गुप्त को हटा कर कुमार रवीन्द्र को शामिल कर लिया गया)।

दूसरे खण्ड के दस कवि पूरे होने के बाद कुछ और कवि छूट रहे थे तो तीसरे खण्ड की बात आयी। दिनेश सिंह, विनोद निगम और डॉ. सुरेश को तीसरे दशक के लिये चुन लिया गया। सोम ठाकुर और बुद्धिनाथ मिश्र के लिए पहले तो डा.साहब मना करते रहे कि ये दोनों कवि सम्मेलन याद करते हैं, लिखते-लिखाते कम हैं। इसी तरह श्रीकृष्ण तिवारी को लेकर उनके मन में नाटकीय किस्म की दुविधा थी, बाद में खुद ही उनके मन की गुत्थी सुलझ गयी और इन तीनों को ले लिया। अंत में आयु के अनुसार चयनित कवियों की सूची (दशक-एक और दो के लिए) को अंतिम रूप दिया गया। तीसरे दशक के लिए बाकी छूटे कवियों की तलाश का काम वे खुद ही करेंगे, यह तय हुआ। पत्र व्यवहार अधिकांश मैंने ही किया। सीनियर्स से शंभुनाथ खुद भी पत्र व्यवहार करते रहे। कुछ सामग्री सीधे मेरे पास कटनी आयी और कुछ डॉ. साहब के पास, जो उन्होंने कटनी आकर मुझे सौंप दी। पाण्डुलिपि तैयार करने का काम उन्होंने मुझे ही सौंपा।

संशोधन मैंने किसी की कविता में नहीं किया। छोटी-मोटी छांदसिक या लयात्मक गड़बड़ियों को जरूर ठीक करता गया। बहुत कवियों की कविताओं के शीर्षक भी मैंने बदले। नवगीतों की लहर-बहर और प्रभाव के मद्देनजर यह काम करता गया। मेरे लिये यह नया काम था, कुछ सीखने को भी मिल रहा था, इसलिए अपनी अतिव्यस्त जीवनचर्या में से जैसे-तैसे समय निकाल कर बड़ी लगन के साथ मैंने बहुत कम समय में पाण्डुलिपियां डॉ. साहब को सौंप दी। इस दौरान कई बार वे कटनी आये। मैं भी तीन-चार बार वाराणसी उनसे मिलने गया। उनके लगभग दो सौ पत्र हैं मेरे पास, जिनमें नवगीत और नवगीत के कवियों के बारे में, नवगीत दशक योजना के बारे में उनके विचार और चिन्ताएं बड़े ही सहज ढंग से खुलकर प्रकट हुई हैं। नवगीत दशक एक, दो और तीन के लोकार्पण के अवसर पर भी दिल्ली, भोपाल और लखनऊ के कार्यक्रमों में उनके साथ रहा। अपने एक निबंध नवगीत दशक प्रसंग में मैंने इन्हीं सब बातों को कुछ और खोल कर विस्तार से लिखा है।

जिस्म पूरा तिलमिलाता है।

ये शब्द हैं प्रसिद्ध नवगीतकार राम सेंगर के। जीवन के बहत्तर वसंत पार कर चुके हैं पर शब्दों की संवेदना के आलोक में आज भी उनकी पंक्तियां कैसी असह साधना का प्रतिफल हैं, उन्हें जो पढ़े-सुने, वही जान-समझ सकता है। आम आदमी की पीड़ा से गहरा सरोकार रखने वाले राम सेंगर कहते हैं - ऐसे बुरे वक्त में 'पागल होने से अच्छा है, लिखते-लिखते मर जाना।' उनके शब्द, उनके स्वयं के जीवन-अनुभवों के दिये हुए हैं। उन्होंने अपने जीवन में जो कुछ देखा, भोगा; अपने तथा दूसरों के अनुभवों से जो कुछ सीखा, वही सब शब्दाकार कर रहे हैं। उनके गीतों की भाषा, मुहावरे आंचलिक भले हों, उनमें सादगी को बचाते हुए वह समकालीन वैश्विक चिंताओं को सलीके से उकेरते हैं। इसीलिए उनके गीतों में गोपाल सिंह नेपाली और कैलाश गौतम जैसी वक्रता एवं तेवर दिखाई देते हैं।

राम के नवगीत अनूठे दस्तावेज : शिवबहादुर सिंह भदौरिया

राम सेंगर के नवगीत, जीवन की समग्रता से अर्जित ऐसे दस्तावेजी शब्द हैं, जो अब तक की पूरी नवगीत परम्परा से कई मायनों में बिल्कुल अलग और अनूठे हैं। उन्होंने अपने सामाजिक-साहित्यिक अनुभवों को बड़े कौशल से गीतों में साधा है। अपने समकालीन क्रूर अराजक संसार की असंगतियों को पूरी तरह खोलकर रख दिया है। तभी वे अपनी कविता में राम सेंगर होने के अर्थ को इतने जीवन्त रूप में चरितार्थ कर पाये हैं। उनके राम सेंगर होने का यह अर्थ या आशय, नाम के साथ केन्द्रित होकर नहीं रह गया, अपितु, नजरिये के सारे विश्वासों के साथ निबद्ध उनकी समूची काव्य-यात्रा में, प्रसंगों-संदर्भों और जीवनस्थितियों के अन्तर्गुम्फन में, टकराहट और संयोजन में, बात कहने के ढंग में, रचनाशीलता की अपनी शर्तों के साथ सारे विधायी पहलुओं और प्रश्नों को समेटे अन्तर्व्याप्त हो गया है। उनकी काव्य भाषा के व्यंजक विधान में यह अन्तर्व्याप्ति, कथ्य और लेखकीय आशय के रंगों के साथ मानो एकात्म होकर घुली-मिली है। अपने खास नजरिये से उन्होंने अपनी सृजनात्मकता के सारे रास्ते खोले हैं। उन्हीं रास्तों से चलकर उन्होंने जीवन के आर-पार देखते हुए मानवीय संकटबोध को गहराई के साथ अपने अहसास में उतारा है। व्यक्ति राम सेंगर और कवि राम सेंगर एक दूसरे के बरअक्स रखकर समझने की कोशिश यदि की जाये तो उनकी पहचान के और-और न जाने कितने ऐसे अनचाहे पहलू उजागर होंगे। ऐसे कवि की कविता तभी आनंद देती है, जब उसे धैर्य और गम्भीरता से पढ़ा जाये। वह कविता में निरन्तर संघर्ष करते रहे हैं। जीवन बोध का कोई ऐसा आधार सूत्र नहीं, जो उनके नवगीतों में किसी न किसी रूप में प्रतिमान बनकर प्रत्यक्ष न होता हो। उनकी सजग और सचेष्ट वास्तवदर्शी मूल्यदृष्टि की परिधि में वह सब अनायास आया है, जिसे वे अपनी जनपक्षधरता की समझ के साथ अभिव्यक्ति का अभीष्ट मानते रहे हैं।

राम की रचनाओं में आम आदमी के कथ्य : गुलाब सिंह

राम सेंगर समाज के रिसते घावों और जनविरोधी विडम्बनाओं के बीच अस्तित्वरक्षा के लिये संघर्ष करते आम-आदमी में अपना कथ्य ढूँढते हैं और अपने अनुभव वृत्तों के केन्द्र में खड़े होकर भाषायी बेबाकी से जुड़ते हैं। गीत के रूढ़ ढाँचों-खाँचों को तोड़ते हुए वे अनगढ़ और विरूप से लगने वाले शब्दप्रयोगों से अपनी कविता के लिये एक जीवन्त-नैसर्गिक कहन का विकास करते हैं। इस कहन की जो धज उन्होंने विकसित की है, वह हिन्दी नवगीत में सबसे अलग है। उन्होंने छन्द के बंधन तोड़े नहीं हैं, बल्कि ढीले किये हैं और उस ढील को अपनी तरह की तकनीक प्रदान करते हुए नये छन्दों की रचना का उत्प्रेरक बनाया है। ऐसे गीतों में उनका वतुर्लाकार अंतरा कथ्य के विस्तार को संघठित कर, कुछ दूरी तय करने के बाद टेक पंक्ति के सम पर लौटता है और ऐसी अनूठी कथ्यपूर्ण अर्थ छवियाँ उकेरता है, कि लयात्मकता और शब्द विन्यास का उनका राग-संवेदनात्मक-संतुलन सजीव हो उठता है। इस निर्द्वन्द्व भाव-प्रक्षेप और प्रयोग के लिये वे किसी भी आलोचना की परवाह नहीं करते।

'राम सेंगर की जनसंवेद्य रचनाशीलता का सरोकार मानव को संजीवित करने वाली प्रतिबद्धता से जुड़ा हुआ है, इसलिये चारित्रिक, पारिवारिक, सामाजिक या राजनैतिक कही जाने वाली किसी भी हिंसा का प्रखर प्रतिवाद करते उनके नवगीत आम जन को भय मुक्ति के लिये, छद्म और मक्कारी के विरुद्ध लड़ने के लिये शक्ति प्रदान करते हैं।

'एक पारदर्शी नैतिकता की पुनर्प्राप्ति की गुहार और अस्त होती संवेदनशीलता के पुनरोदय की उम्मीद से भरी उनकी कविताओं में साकार होती समयदंश की अनुभूत तिलमिलाहट, अगर, पाठक से साझा नहीं करती, तब, रचना का अलग से कोई अर्थ हो भी, तो उसका उपयोग ही क्या? यह प्रश्नाकुलता उनकी रचनाओं के सामने एक आईने की तरह समुपस्थित होती है। राम सेंगर की कविता के मूल स्वर को समझना यद्यपि, आसान नहीं है, तथापि, ऐसा जरूर लगता है कि जिन्दगी के लिये नई सुबह की प्रतीक्षा करतीं उनकी कविताएँ पतझर की मनहूसियत के आगे नई कोपलों का स्निग्ध रंग बिखेरना चाहती हैं। कविता से ऊबे पाठकों को, उन्हीं के अनुभव एक सजीव भाषा में सौंपकर उन्हें स्पंदित और विचलित करने की शक्ति से सम्पन्न उनकी कविताएँ हाथ पर हाथ रखकर बैठे रहने के विरुद्ध एक समरलोक रचती हैं।

राम सेंगर कहते हैं - मेरा बचपन गांव में बीता। बड़े भाई की कला-साहित्य में गहरी रुचि थी। प्रेमचन्द और मैथिलीशरण गुप्त उनके प्रिय साहित्यकार थे। खुद भी उर्दू में शायरी करते थे। बहुत मजे हुए रंगकर्मी भी थे। वह कला-संगीत के इसी माहौल में पले-बढ़े। जैसे-जैसे समझ आती गयी, वह नशा मन पर चढ़ता गया। उसी नशे में तुकबन्दी करना शुरू हुआ। वह कहते हैं कि हर छंदबद्ध कविता, गीत नहीं होती और हर

वह नवगीत आंदोलन के प्रतिनिधि कवि : राम किशोर दहिया

राम सेंगर नवगीत को समृद्धि एवं आकार प्रदान करने के लिये डॉ.शम्भुनाथ सिंह के साथ लगातार नवगीत जन आन्दोलन में कटनी से देश का प्रतिनिधित्व करते रहे हैं। उन्होंने डॉ.शम्भु नाथ सिंह द्वारा सम्पादित नवगीत दशक-एक, दो एवं तीन की सम्पूर्ण सामग्री जुटाने, पांडुलिपि तैयार करने, रचनाकारों और उनकी कविताओं के निष्पक्ष चयन में सहयोगी जैसी महत्वपूर्ण भूमिका का निर्वहन किया है। उनके सान्निध्य में मुझे भी काफी कुछ सीखने और नवगीत में अपनी कहन शैली को परिमार्जित कर विकसित करने के कटनी में खूब अवसर मिले हैं। संवेदनात्मक आलोक')

दो टूक बात कहने में समर्थ प्रयोगधर्मी कवि : कृष्ण भारतीय

राम सेंगर के गीतों की अपनी ही बानगी है। कभी-कभी गीतों में जो वह कहना चाह रहे हैं, बात को वहाँ से शुरू करते हैं, जहाँ से हम सोचते भी नहीं हैं। मसलन, जोर से मत खाँस, असल में ये चेतावनी का नया रूप है कि जिंदगी डर के जीने से कुछ उपलब्ध नहीं बनेगी वरन और जोर से हँसकर प्रहार करेगी। मेहरबानियों और न्याय की उम्मीद उनसे कैसी, जो कमीनेपन के लबादे ओढ़कर न्यायविद वकील बने बैठे हैं। अकसर उनके गीतों में बड़े नये-नये बिंबों व प्रतीकों के प्रयोग देखने को मिलते हैं, जिन्हें प्रयोगधर्मी बनाने में कवि घबराता भी है। मैं स्वयं अकसर सोच में पड़ जाता हूँ और फिर शोध की मगजमारी में घुसता हूँ कि ये प्रतीक इस्तेमाल की जरूरत क्यों पड़ी। दो टूक बात कहना राम सेंगर को अच्छा लगता है। कोई दुराव या झिझक नहीं। राम सेंगर अपनी छाप छोड़ने की क्षमता रखते हैं। उन्हें पता है, बात कैसे प्रभावशाली ढंग से रखनी है।

गीत, नवगीत नहीं होता। भाव-विचारों के साथ रचा-पचा कथ्य, कौशल से साधे गये विन्यास के साथ लयात्मक बनाया जाता है और निर्वाह के लिए इसी लयात्मकता को और अच्छा तारतम्य देकर एक लहर पैदा की जाती है। इसी लहर से स्वर निकलता है। गीत या नवगीत की पहचान इसी स्वर से होती है। स्वर का यही अन्तर दोनों के बीच संरचना और शिल्प के अन्तर को स्पष्ट करता है। नये भाव बोध को समझने या पकड़ने की कवायद से ही काम नहीं चलता, उसे कविता में उतारने की कला या तकनीक पर ही अधिक कुछ निर्भर करता है। यही रचनाशीलता की कसौटी है और यही कविकर्म के लिए चुनौती। इसी से कोई कविता गीत बन कर रह जाती है घिसा-पिटा, और कोई नवगीत बन जाती है।

पढ़ते ही मन पर कौंध जाती है उनकी छवि : राम शंकर वर्मा

रामसेंगर के नवगीतों को पढ़ते ही मन पर मोटे चश्मे से झाँकती वह सौम्य मुखाकृति कौंध जाती है, जो समय के आर-पार देखने में सक्षम है। उनके नवगीत समय के साथ व्यवस्था और समाज में आये सामाजिक आर्थिक विचलन, विखण्डन, स्वप्नभंग की अच्छी पड़ताल करते हैं। उनके नवगीत कथ्य, भाषा, शब्द विन्यास और शिल्प के स्तर पर उनकी परिपक्व पकड़ के साक्षी हैं।

लोक जीवन में बिखरे विषयों पर उनकी सतर्क दृष्टि बहुआयामी है। उनके नवगीतों में वर्ण्य की अछोर विविधता है, मेहनतकश आम आदमी की विवशता का दैनंदिन हाहाकार है, भोगे हुए यथार्थ से अनुभव ग्रहण कर नये रास्ते तलाशने, अनय का प्रतिकार कर अटूट जिजीविषा के सहारे सकारात्मक दैनिकचर्या के अद्भुत विम्ब हैं।

सत्ता और शक्ति के खिलाफ अभिव्यक्ति के खतरे की ओर संकेत करते उनके नवगीत एक मारक व्यंग्य जैसे होते हैं। उनमें सूत्रवाक्य की तरह अर्थवान, सम्प्रेषणीय मुखड़ों का आकर्षण कहीं सम्मोहित करता है, कहीं विचारोत्तेजना पैदा करता है, आगे के अंतरों के प्रति सहज जिज्ञासा उत्पन्न करता है। जनपदीय हिन्दी के सहज शब्दों का सार्थक और सटीक शब्द-चयन उनके पास उपलब्ध विपुल शब्द भण्डार का संकेत है। उनके संग्रहों के नवगीतों में बघेली और ब्रजभाषा के शब्दों का अर्थ जानने के लिए मुझे कई बार डिक्शनरी देखनी पड़ी, पर वहां कुछ हाथ नहीं लगा। फिर मैंने फोन पर जिज्ञासा शान्त की।

कविता में लोकभाषा के ऐसे प्रयोगों से जहां हिन्दी समृद्ध होती है वहीं लुप्त होती शब्द संपदा का संरक्षण भी होता है।

रहते तो मर जाते

ताराचन्द, लोकमन, सुखई
गांव छोड़कर चले गये
गांव, गांव-सा रहा न भैया,
रहते तो मर जाते।
धंधे-टल्ले बन्द हो गये,
दस्तकार के हाथ कटे
लुहरभट्ठियां फूट गयीं सब,
बिना काम हौसले लटे
बढई, कोरी, धींवरटोले,
टोले महज कहाते।
हब्बी, फत्ते और ईसुरी
जात-पांत की भेंट चढ़े
भाग गया सुलतान हाथरस,
पापड़ बेले बड़े-बड़े
रिक्शा खींच रहा मुंहबांधे,
छिपता नहीं छिपाते।
तेलीबाड़ा, राजबाड़ा था
मलवे से झांकता नहीं
शहजादी, महजबीं, जमीला
किधर गयीं, कुछ पता नहीं
पागल हुआ इशाक, दिखे अब
कहीं न आते जाते।
टुकड़े-टुकड़े बिकी जमीनें
औने-पौने ठौर बिके
जीने के आसार रहे जो
चलती बिरियां नहीं दिखे
डब-डब आंखों से देखे
बाजे के टूटे पाते।

अकड़ गया रमजानी

रात अँधेरी, भूख और जालिम बंबा का पानी।
इत मूँदे, उत फूटे किरिया-भरा न दीखे,
फरुआ चले न खड़ी फसल में खीझे-झींके,
पहली सींच ठंड में भीगा अकड़ गया रमजानी।
लालटेन अलसेट दे गई, शीशा टूटा,
उड़ी शायरी 'पत्ता पत्ता-बूटा बूटा',
हाल न उसका कोई जाने कैसी अकथ कहानी।
मिट्टी में लिथड़े, पाजामा-पहुँचे धोए,
कोट न फतुही थर-थर काँपे, खोए-खोए,
रोक मुहारा आस्तीन से पोंछ रहा पेशानी।
बगीचिया से बीन जलावन आग जलाई
देह सिंकी, बीड़ी सुलगी, कुछ गरमी आई
बदली सूरत का, सच जाना, बढ़ी और हैरानी।

हुई कुल्हाड़ी लाल

चबूतरा बढ़ई टोले का जुड़ी हुई चौपाल।
राम मनोहर मुसका बुनते बटे जेबरी चन्ना,
बजा रहा पीपनी निरंजन मटकें भग्गा-नन्ना,
गुड़गुड़ा रहे हुक्का लहुरे कौंधे नहीं सवाल।
ओमा, चंद्रपाल, गिद्धारी मुँहफट तीन तिलंगे,
हाँक रहे हैं इधर-उधर की खिखियाते हुड़दंगे,
डालचंद्र की सुने न कोई पीट रहे हैं गाल।
खेत मजूरी चौका चूल्हा किचिर-पिचिर का शोर,
बात अहम सब, मिले न लेकिन किसी बात का छोर,
कह-सुन कर काटे आपस की चिंताओं का जाल।
मथुरावाली मजे तमाखू, पान बनाए अंची,
जीसुखराम लतीफा झाड़े, रजुआ खेले कंची,
पकड़ धूप का नुक्कड़ अंगूरी सुखा रही बाल।
लीलाधर का चले वसूला, यादराम का रंदा
बजे निहाई पर धन, खुरपी, ढाल रहा खरबंदा
पंखी चले, कोयले दहकें, हुई कुल्हाड़ी लाल।

हम वह कटी पतंग नहीं हैं

हम जीवन के महाकाव्य हैं
केवल छंद प्रसंग नहीं हैं।
कंकड़-पत्थर की धरती है,
अपने तो पाँवों के नीचे,
हम कब कहते बंधु! बिछाओ,
स्वागत में मखमली गलीचे,
रेती पर जो चित्र बनाती,
ऐसी रंग-तरंग नहीं है।
तुमको रास नहीं आ पाई,
क्यों अजातशत्रुता हमारी,
छिप-छिपकर जो करते रहते,
शीतयुद्ध की तुम तैयारी,
हम भाड़े के सैनिक लेकर,
लड़ते कोई जंग नहीं हैं।
कहते-कहते हमें मसीहा,
तुम लटका देते सलीब पर,
हँसे तुम्हारी कूटनीति पर,
कुढ़ें या कि अपने नसीब पर,
भीतर-भीतर से जो पोले,
हम वे ढोल-मृदंग नहीं हैं।
तुम सामूहिक बहिष्कार की,
मित्र!! भले योजना बनाओ,
जहाँ-जहाँ पर लिखा हुआ है,
नाम हमारा, उसे मिटाओ,
जिसकी डोरी हाथ तुम्हारे,
हम वह कटी पतंग नहीं हैं।

देवेन्द्र शर्मा

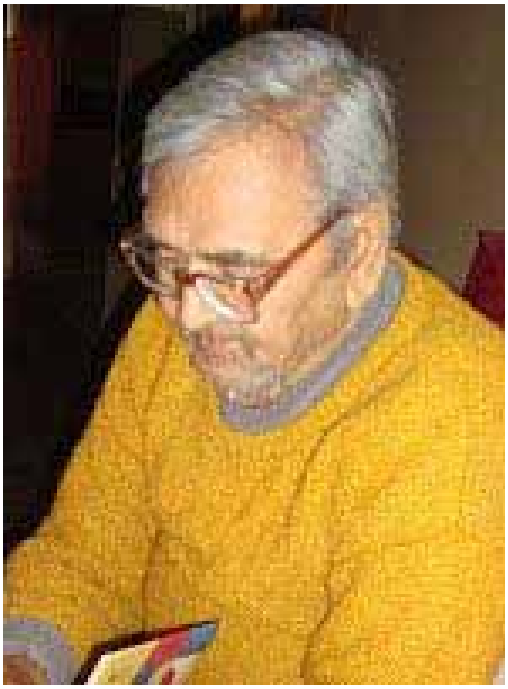

खिड़की गई छली

नहीं तनिक अफसोस तवे को रोटी भले जली।
साँठ-गाँठ अच्छी है अब तो चूल्हे से लकड़ी तक,
रहा नहीं, अवशेष हाथ कुछ उतर गई पगड़ी तक,
चिमटे की करतूत, बिचारी सँड़सी रूठ चली।
चौका-बासन, मेहनत पानी हाड़तोड़ हैं करते,
बटुली और भगौने आखिर नौकर-चाकर घर के,
कोने हैं चुपचाप घरों के, रोई गली-गली।
शब्द-अर्थ से दूर रसोई करती है अन्वेषण,
भावों की भावुकता लेकर कथ्यों का सम्प्रेषण,
दरवाजों ने हिस्से बांटे, खिड़की गई छली।

अवनीश त्रिपाठी

कृष्ण बक्षी

हम इतने दूध जले

अर्थ समझ न पाये हम कुछ ता-ता थैया का।
ढूँढ रहे हैं अभी रास्ता भूल-भुलैया का।
अद्भुत तोहफा मिला समय की नई तमीजों का,
आधा कपड़ा बचा देह पर ढकी कमीजों का,
नंगे कूद रहे हैं सारे स्वीमिंग पूलों में,
भूलभाल कर नाम लोग ये ताल-तलैया का।।
छांछ फूँक कर पीते हैं हम इतने दूध जले,
कंकरीट के महलों से थे आँगन वही भले,
रोज शाम दीपक जलता था तुलसी चौरे पर,
लीप-पोत लेते थे घर में गोबर गैया का।
वादा तो था सचमुच हमको पार लगाने का,
एक सुखद सपने की चौखट तक ले जाने का,
भूतकाल तो पहले ही खंडित था बापू का,
वर्तमान भी टूट रहा है बूढ़ी मैया का।

अब तो खोल जुबान बावरे

बैठा लिये, थकान बावरे।
अब तो खोल जुबान बावरे।
गये वक़्त को गोली मार,
अपने पंख जरा, झटकार,
अबके चूक न जाये वार,
भर अब और उड़ान बावरे।
डगर हो बेशक ये पथरीली,
लेकिन चाल न करना ढीली,
मंज़िल है काफी गवीर्ली,
राह में छोड़ निशान बावरे।
कर्जे.से तन रहा कांपता,
साल-साल भर धूल फाँकता,
धूप-छांव में बखर हाँकता,
पिटता रहा किसान बावरे।
बात न करना हारी-हारी,
आखिर होगी जीत तुम्हारी,
रहे अगर अभ्यास ये जारी,
झुक जाये तूफान बावरे।

लिख भेजा अम्माँ ने खत में

बरसों बाद आज रात को मीठे-मीठे सपने आये।
सूखे से लड़ने को आतुर हमें दिखीं नदियाँ दीवानी,
मीठे जल में बदल रहा था धीरे-धीरे खारा पानी,
ऐसे सुखद क्षणों में हम भी घंटों बैठे, और नहाये।
मौसम यदि अनुकूल रहा औ' घर तक गल्ला पूरा आया,
लिख भेजा अम्माँ ने खत में पट जायेगा कर्ज.बकाया,
लीप-पोत कर आँगन घर का भाभी ने हैं दिये जलाये।
देखे हमने एक नाव में चढ़ते सूरज-चाँद-सितारे,
पीछे-पीछे किरण दौड़ती आगे भाग रहे अँधियारे,
अब तक तो कुछ, घटा न ऐसा शायद ये ही सच हो जाये।

नरसिंह बहादुर 'चंद' कौशिक

प्रहरी हुए प्रमादी जब-जब

प्रहरी हुए प्रमादी जब-जब
भंग हुई तब-तब मयार्दा,
शोषण की सीमाएं टूटीं,
तब कोई संयम टूटा है,
दुखदायी परिणाम हुआ है।
न्याय निराश हुआ है जब-जब,
तब कोई कुरुक्षेत्र बना है,
लोग लड़े जब-जब आपस में,
किसी बाहरी ने लूटा है,
तब-तब देश गुलाम हुआ है।

लालच ने जब पांव पसारा,
द्वेष-दंभ की विजय हुई है,
नंगे, भूखे जब तड़पे हैं,
धरती का धीरज टूटा है
और घोर संग्राम हुआ है।
श्रमजीवी जब-जब रोये हैं,
शोणित से धरती भीगी है,
नायक जब-जब हुए स्वार्थी,
तब-तब बागी स्वर फूटा है,
और तंत्र बदनाम हुआ है।

हम मौन हैं, मरे नहीं

तिमिर को दर्प हो गया, जो उसने आँख खोल दी,
तो दीप-वीप, सूर्य-वूर्य चाँद-वांद जल गए।
कि फूल-वूल मिट गए, कि कोयलें दुबक गयीं,
कि रौशनी कुचल गयी,
सभी नगर, सभी डगर कि गाँव, बाग, द्वार, घर
खुशी के सारे आसरे, हंसी के सारे पैंतरे,
विशाल कृष्ण-रात्रि कण्ठ खा गए, निगल गए।
तिमिर को दर्प हो गया, जो उसने आँख खोल दी,
तो रास्तों का बोलना, तो जिन्दगी का डोलना,
तो जागृति का जागना, तो कालरथ का भागना,
तो प्रश्न की प्रगल्भता, तो सत्य की वाचालता,
घने तिमिर के कुण्ड में पिघल-पिघल, पिघल-पिघल
अखण्ड मौन-शांति-भय में ढल गए, बदल गए।
मगर तभी मुंडेर पर, तिमिर का वक्ष भेदकर,
चला था थाम ज्योति कर, वो अपनी आग बांटकर,
असंख्य दीप को जला गरज उठा वितान में,
तिमिर! तुम्हारे भौंकने से, डांटने से, छौंकने से, सत्य तो टले नहीं
ये शांति है तो भूलकर, ये भ्रान्ति पालना नहीं,
हम शांत हैं, डरे नहीं, न युद्ध से परे कहीं, न शस्त्र ही धरे कहीं,
इसीलिए ये जान ले, या मैं कहूँ कि मान ले,
हमारी जीत-हौसले, हमारी नीति-फैसले,

राघवेंद्र शुक्ल

किसी भी भाग्य-साग्य के, कभी भी आसरे नहीं,
कि मौन हार मान मत, कि अपना शीश तान मत,
हम मौन हैं, डरे नहीं, हम मौन हैं मरे नहीं।

अमरदीप

किसी का आसमाँ होना

जमाने में बुरा क्यों है,
किसी से आशना होना।
किसी पे जान दे देना,
किसी पर मेहरबाँ होना।
किसी को जान कह देना,
किसी का जाने जाँ होना,
जो किस्सा बंद था उसका,
बुरा है क्यों बयाँ होना।
अगर है इश्क बीमारी
तो बीमारी भली हमको,
अगर करती है तनहा भी,
मगर यारी भली हमको,
नहीं है सबके बस का रोग,
किसी दिल पर निशाँ होना,
किसी का लफ्ज बन जाना,
किसी का आसमाँ होना।

डॉ.भावना शेखर

मैं और नीम

पानी, पत्थर, आंधी, ओले।
हँस के, रो के, सब कुछ झेले,
पात सजाए, पात गिराए।
फिर-फिर फूल खिले, मुरझाए,
पतझर संग अनंत वसंत
अपनी देह पर ओढ़े बिछाए,
पाँखी उड़-उड़ फुनगी बैठे,
जब तब डार पे नीड़ बनाए।
ऐसा ही मानव का जीवन,
मुक्ति-मुक्ति में अनगिन बन्धन,
कहीं रक्त का, कहीं नमक का,
कहीं विवशता, कहीं खुला मन,
सबको ढोते, निभते, कटते,
कब बन जाते हम भी उपवन।
बाट जोहते उन अपनों की,
जो उड़ चले राह सपनों की,
हम बैठे अब डाले खटिया,
नीम तले दिन में दुपहरिया,
दोनों टुक-टुक ताका करते,
अपने सुख दुःख बांटा करते,
चोरी चोरी आँख टपकती,
जब-जब बदली आन बरसती
नीम बना अब मेरा साथी
दोनों टूटी नाव के मांझी।

राकेश प्रवीर

अपने पास कलम का धन है

सबका अपना-अपना मन है।
अलग-अलग सबका जीवन है।
किस पर, किसका जोर चला कब,
तन-मन का ऐसा बन्धन है।
अपनी धाक जमाने खातिर,
क्या-क्या करतब करता जन है?
व्याल डाल पर भले रहे, पर
चन्दन तो फिर भी चन्दन है।
सहज बात यह साफ समझ लें,
सुरभित धरती का कण-कण है।
उनकी दौलत राज सिंहासन,
अपने पास कलम का धन है।

सृजन के ऐसे अनोखे दौर में

एक मिट्टी का घरौंदा तोड़कर
तुम नवल प्रासाद रचने चल दिए।
जिंदगी की हाय मोटी हो गई,
वेदना असहाय छोटी हो गई,
शब्द की आंखें लजाईं लाज-सी,
भावना निरुपाय रोटी हो गई,
कैद कर मीठे सपन भी भोर के,
तुम धवल अवसाद रचने चल दिए।
आसमां की खो गई खिलती हंसी,
चांद के आंसू कहें निज बेबसी,

सृजन के ऐसे अनोखे दौर में,
लेखनी करने लगी है खुदकुशी,
रोशनी के मान पर अपमान से
तुम प्रबल परिवाद रचने चल दिए।
गंध चंदन की न डरती नाग से,
रागमय अनुबंध रखती राग से,
हाथ कंगन को भला क्या आरसी,
फैलती खुशबू जहां में आग से,
हारकर हर ओर से, लाचार हो,
तुम विफल संवाद रचने चल दिए।

डॉ. राम विनय सिंह

बालस्वरूप राही

मैं फिर भी कहूँगा कि सही बात सही है

जो बात मेरे कान में ख़्वाबो ने कही है।
वो बात हमेशा ही गलत हो के रही है ।
जो चाहो लिखो नाम मेरा सब है मुनासिब
उनकी ही अदालत है यहाँ, जिनकी बही है ।
टपका जो लहू पाँव से मेरे तो वो चीखे
कल जेल से भागा था जो मुजरिम वो वही है ।
वो चाहे मेरी जीभ मेरे हाथ पर रख दे
मैं फिर भी कहूँगा कि सही बात सही है ।
इक दोस्त से मिलने के लिए कब से खड़ा हूँ
कूचा भी वही, घर भी वही, दर भी वही है ।
उम्मीद की जिस छत के तले राही रुका मैं
वो छत ही कयामत की तरह सिर पे ढही है ।

बड़ा मुश्किल है दुनिया में जरा सी रौशनी करना

अचानक दोस्ती करना, अचानक दुश्मनी करना।
ये उसका शौक है यारों सभी से दिल्लगी करना।
सभी जज्बात को दीवानगी की हद समझते हैं,
ये ऐसा दौर है इसमें संभल कर शायरी करना।
अंधेरे आँधियाँ बनकर चिरागों को बुझाते हैं,
बड़ा मुश्किल है दुनिया में जरा सी रौशनी करना।
खिजाएँ ढूँढती फिरती हैं बागों में बहारों को,
न लब पर फूल महकाना, न आँखें शबनमी करना।
वफा के नाम पर 'राही' चलन है बेवफाई का,
न इसके नाम अपनी रूह की कोई खुशी करना।

दिन को दिन, रात को जो रात नहीं कहते हैं

अक्ल ये कहती है, सयानों से बनाए रखना।
दिल ये कहता है, दीवानों से बनाए रखना।
लोग टिकने नहीं देते हैं कभी चोटी पर,
जान-पहचान ढलानों से बनाए रखना।
जाने किस मोड़ पे मिट जाएँ निशां मंज़िल के
राह के ठौर-ठिकानों से बनाए रखना।
हादसे हौसले तोड़ेंगे सही है फिर भी,
चंद जीने के बहानों से बनाए रखना।
शायरी ख़्वाब दिखाएगी कई बार मगर,
दोस्ती गम के फसानों से बनाए रखना।
आशियाँ दिल में रहे आसमान आँखों में,
यूँ भी मुमकिन है उड़ानों से बनाए रखना।
दिन को दिन, रात को जो रात नहीं कहते हैं,
फासले उनके बयानों से बनाए रखना।
एक बाजार है दुनिया जो अगर 'राही जी',
तुम भी दो-चार दुकानों से बनाए रखना।

सब आसार खलल के हैं

उनके वादे कल के हैं
हम मेहमाँ दो पल के हैं ।
कहने को दो पलके हैं
कितने सागर छलके हैं ।
मदिरालय की मेजों पर
सौदे गंगा जल के हैं ।
नई सुबह के क्या कहने
ठेकेदार धुँधलके हैं ।
जो आधे में छूटी हम
मिसरे उसी गजल के हैं ।
बिछे पाँव में कि स्मत है
टुकड़े तो मखमल के हैं ।
रेत भरी है आँखों में
सपने ताजमहल के हैं ।
क्या दिमाग का हाल कहे
सब आसार खलल के हैं ।
सुने आपकी राही कौन
आप भला किस दल के हैं ।

जहीर कुरैशी

अकेले हम 'चुइंगम' हो रहे हैं

अचानक कैसे मौसम हो रहे हैं।
सफर के हौसले कम हो रहे हैं।
मैं जिन रस्तों पे चलना चाहता था,
वो रातो-रात दुर्गम हो रहे हैं।
बता देते हैं सब अपनी जरूरत,
अकेले हम 'चुइंगम' हो रहे हैं।
इसे खुल कर दिखाया जा रहा है,
नदी के बीच संगम हो रहे हैं।
कभी भी झांक लेते हैं विगत में,
वो जिनके हाथ 'अलबम' हो रहे हैं।
दुखी होने में कुछ लगता नहीं है,
किसी भी बात पर गम हो रहे हैं।
वहां विस्फोट होकर ही रहेगा,
दिमागों में अगर 'बम' हो रहे हैं।

सियासतों में नई पारियों की बात चली

चुनाव पूर्व ही, तैयारियों की बात चली।
समर्थकों से वफादारियों की बात चली।
गरीब लोग ही 'बंधुआ' बनाए जाते हैं,
गरीब लोगों की लाचारियों की बात चली।
किया विरोध तो प्रतिवाद सामने आए,
विरोधियों से पलटवारियों की बात चली।
जो सत्ताधीश हैं, घर उनके बन गए दरबार,
जहां विचौलिए दरबारियों की बात चली।
वो शब्दकोष से बाहर निकल नहीं पाते,
नई सदी में, सदाचारियों की बात चली।
तनाव मां है शगर, हार्ट, थायराइड का,
कुछ इस तरह से भी बीमारियों की बात चली।
हुआ है आग का पानी के साथ गठबंधन,
सियासतों में नई पारियों की बात चली।

किसी का और कितने रोज रोए

अंधेरे को बढ़ाना चाहती है।
हवा दीपक बुझाना चाहती है।
वो मजबूरी में उसके पास आकर
स्वयं से दूर जाना चाहती है।
लड़कपन याद करने के लिए ही,
वो बच्चों को पढ़ाना चाहती है।
वो लिखना चाहती है हर कहानी,
वो शब्दों का खजाना चाहती है।
किसी का और कितने रोज रोए,
वो अब हंसना, हंसाना चाहती है।
न हो जिससे कभी उसकी रिहाई,
वो ऐसा कैदखाना चाहती है।
हजारों मील की दूरी से चलकर,
नदी सागर को पाना चाहती है।

मैं चाहता हूं, न बच्चों में जात-पात रहे

बहेलियों के सभी खेल उसको ज्ञात रहे,
बचत के हौसते औरत में जन्मजात रहे।
ममा से धैर्य, पिता से मिला जुझारूपन,
ममा के साथ, पिता मुझमें आत्मसात रहे।
ये बीज मन में लड़कपन से बोए जाते हैं,
मैं चाहता हूं, न बच्चों में जात-पात रहे।
रखैल के लिए रुकता है कौन भोर तलक,
वो हर महीने मेरे साथ एक रात रहे।
हैं अनुभवों की कई डिग्रियां गरीब के पास,
पढ़ाई पूछ के देखी तो छह जमात रहे।
लता स्वयं ही तने से लिपटने लगती है,
कहीं तो प्यार के संबंध भी बलात रहे।
तुम्हें मिली है अगर न्यायाधीश की कुर्सी,
तुम्हारे मन में न थोड़ा भी पक्षपात रहे।

डॉ. कृष्ण कुमार प्रजापति

जमाने में यहां दिल से मुहब्बत कौन करता है

अगर हो पेट खाली तो बगावत कौन करता है?
गरीबी में यहां ऐसी हिमाकत कौन करता है?
नुमाइश है खुले तन की, हवस का बोलबाला है,
जमाने में यहां दिल से मुहब्बत कौन करता है?
न लालच मांगने का हो, न पाने की कोई ख्वाहिश,
बगैर इसके जमाने में इबादत कौन करता है?
सभी मतलब के साथी हैं, किया करते हैं तारीफें
हमारे सामने आकर शिकायत कौन करता है?
तुम्हारा चेहरा उतरा है, तुम्हारी जुल्फ बिखरी है,
तुम्हारे साथ ये आखिर शरारत कौन करता है?
जमाने में सिवा तेरे, मेरा कोई नहीं मौला,
मैं कुछ करता नहीं पूरी जरूरत कौन करता है?
अजब सा खौफ रहता है, दशहरा और मुहर्रम में
हमारे शहर में ये गंदी सियासत कौन करता है?
'कुमार' आंखें दिखाते हैं, मेरे भाई मेरे दुश्मन,
गरीब इंसान हूं, मेरी हिमायत कौन करता है?

लुट गए आप भी

सबसे मिलता रहा।
यूं ही जिंदा रहा।
दर्द क्या चीज है,
हंसता-गाता रहा।
लुट गए आप भी,
खूब किस्सा रहा।
बात तो होती रही,
बात में बरदा रहा।
कुछ न हासिल हुआ,
सब अधूरा रहा।
वो कुमार आएंगे,
जिनको धोखा रहा।

हिम्मत करो, उठो, चढ़ाओ तुम ये आस्तीं

मेरी तलब नहीं कि फरिश्ता कोई मिले।
मैं आदमी हूं, चाहता हूं, आदमी मिले।
खुद जिसको छोड़ आए थे बचपन के दौर में,
क्यूं चाहते हो आज, तुम्हे वो गली मिले।
हिम्मत करो, उठो, चढ़ाओ तुम ये आस्तीं,
लाजिम नहीं, हर बार तुम्हे पटखनी मिले।
करता नहीं है सब्र वो दो-चार बूंद पर,
उसकी हवस तो ये है कि पूरी नदी मिले।
ये तो हमारे दिल की तमन्ना है आज भी,
आंसू हमें नसीब हो, तुमको हंसी मिले।
इस शहर की सड़क में वो तब्दील हो गया,
आंगन में जिस मकान के हम-तुम कभी मिले।
कोई 'कुमार' पढ़ के तो देखे मेरी गजल,
मुमकिन है, किसी शेर में कुछ शायरी मिले।

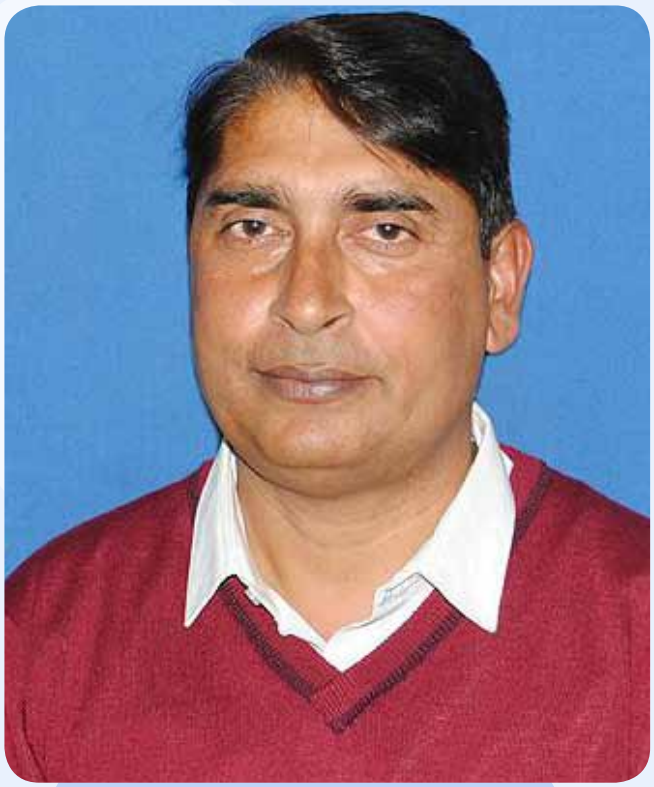

विनय मिश्र

आदमीयत दब रही है आदमी के भार से

कैसे सपने बुन रहे हैं लोग ये लाचार से।
कुछ थके हारे हुए तो कुछ लगे बीमार से।
बात जीने की यहाँ ठहरी हुई कबसे मगर
कागजों पर दौड़ती है जिंदगी रफ़्तार से।
मेरे घर की छत नदारद, मेरा आँगन लापता
फिर भी कोई वास्ता है इस दरो-दीवार से।
हम ठगे से देखते ही रह गये बाजार को
अजनबी ने जेब काटी जिस अदा से प्यार से।
सुखियाँ में है अँधेरा, हादसे रौशन हुए
आदमीयत दब रही है आदमी के भार से।
अब उड़ानों का कोई अंजाम हो परवा नहीं
हौसले तो हो गये जख़्मी समय की मार से।
वो बड़ा महफूज था लेकिन हुआ इक रोज यों
देखते ही देखते लपटें उठी मीनार से।

नाग मचानों में निकले

कम अनुमानों में निकले।
लोग सयानों में निकले।
मुस्काने का मन तो था,
आंसू, गानों में निकले।
सारी फसलें नीली थीं,
नाग मचानों में निकले।
खेतों में खुशियां महकीं,
गम खलिहानों में निकले।
गुलशन जब आजाद हुआ,
हम वीरानों में निकले।
आसमान की छत डाले,
घर दालानों में निकले।
मुझको हंस कर तोड़ गये,
पल पहचानों में निकले।

ये सियासत का करिश्मा है हमारे दौर में

वो सफर में साथ है इस अदाकारी के साथ।
जैसे हो मासूम कातिल पूरी तैयारी के साथ।
मत कुरेदो ये बुझी-सी राख दिखती है मगर,
इसके भीतर हैं दबे जज्बात चिनगारी के साथ।
आ गई हुस्नो अदा की रौनकें बाजार में,
घर की यादें रह गईं बस रंगे फनकारी के साथ।
ये सियासत का करिश्मा है हमारे दौर में,
तख़्त पर बैठा हुआ विश्वास गद्दारी के साथ।
मौत से भी वो कहीं ज्यादा मरा है उम्र भर,
जान फिर भी जाएगी इक रोज बीमारी के साथ।

हँसते हुए बच्चों की आँखों में उतर जाना

खुशरंग फिजा होगी, ये सोचके घर जाना।
हँसते हुए बच्चों की आँखों में उतर जाना।
कुछ देर को जी लेना, कुछ देर को मर जाना,
उस जुल्फ के साये में कुछ देर ठहर जाना।
पतझड़ के जमाने में जब तेज हवाएँ हों,
खुशबू की तरह अपने गुलशन में बिखर जाना।
क्या खूब अदा है ये, हमने तेरी महफिल में,
जज्बात को काबू में रखने का हुनर जाना।
जिसने भी गरीबी का चेहरा न कभी देखा,
किस तौर वो समझेगा इन आँखों का भर जाना।

सियासत गुफ़्तगू से हर दफा दामन बचाती है

गरीबी जब कभी हालात से रिश्ता निभाती है।

अनिरुद्ध सिन्हा

मेरे कच्चे मकानों से कोई आवाज आती है।
खमोशी छाई रहती है, सवालों के उठाने पर,
सियासत गुफ़्तगू से हर दफा दामन बचाती है।
अदब की तंग चादर ओढ़ लेते ही कोई बेटी,
लड़कपन गाँव की गलियों में हँसकर छोड़ जाती है।
कलेंडर में शहीदों की जो सूरत देखता हूँ तो,
गुलामी की कोई तारीख मेरा दिल दुखाती है।
मुहब्बत की कलाई को हवस के थाम लेते ही,
शराफत चीख उठती है, वफा आँसू बहाती है।

प्यासी जमीं के जिस्म पे ऐसी बला की धूप

कदमों के जब निशान इरादों में ढल गए।
हम हौसलों के साथ हवा में निकल गए।
अब भी है अपने नूर पे मगरूर वो बहुत,
रस्सी तो जल गई, मगर न उसके बल गए।
प्यासी जमीं के जिस्म पे ऐसी बला की धूप,
चेहरे थे जिनके चांद, सफर में बदल गए।
फिर मुझको भूलने की भी रस्में अदा हुईं,
जब खत तमाम आपकी यादों के जल गए।
रक्खे हैं जबसे सर पे किसी ने दुआ के हाथ,
मुट्ठी में बंद उनके मुकद्दर सँभल गए।

फनकार भी यहां तो मुझे बेजुबां मिले

दुश्मन जहां पे बाग का खुद बागवां मिले।
मुमकिन नहीं, शुकून किसी को वहां मिले।
किसने शुकून छीना हम सब का दोस्तों,
बस्ती में बस हमारी अब आहो फुगां मिले।
अब कौन रहनुमाई करेगा बताओ तो,
फनकार भी यहां तो मुझे बेजुबां मिले।
हम क्यों विदेश जायें वतन अपना छोड़कर,
जब सबका प्यार दोस्तो हमको यहां मिले।
ये कार, कोठी, बंगला नहीं हमको चाहिए,
बस हक जो है हमारा, हमे वो यहां मिले।
'माहिर' मुझे तलाश मेरे रहनुमा की है,
अब देखता हूं जाके, वो मुझको कहां मिले।

माहिर निजामी

रश्मि जैन

दिल है मेरा कोई माटी का खिलौना तो नहीं

इश्क का इजहार हम यूँ ही किया नहीं करते।
पत्थरों पर कलम से यूँ ही लिखा नहीं करते।
लिख दिया अगर दिल की किताब पर नाम,
लाख चाहे कोई पर वो कभी मिटा नहीं करते।
दिल है मेरा कोई माटी का खिलौना तो नहीं,
जरा प्यार से खेलिए, मगर तोड़ा नहीं करते।
जहां में रस्म ए मुहब्बत मंजूर नहीं किसी को,
दिल किसी का रश्मि घायल किया नहीं करते।

सुरेंद्र शर्मा शतक

शाद और आबाद गम मेरा रहे

दिल ने बोला टूट कर भी शुक्रिया।
कजअदा की हर अदा का शुक्रिया।
इक धुआँ नक़्काशियाँ करता है जो,
मेरे मन की उस घुटन का शुक्रिया।
जुल्म दुनिया ने किया, खामोश तुम,
मैं तो फिर भी बुदबुदाया शुक्रिया।
कातिलाना है नजर खंजर भरी,
खार जैसी इस चुभन का शुक्रिया।
शाद और आबाद गम मेरा रहे,
आपकी है ये इनायत शुक्रिया।
आह पर जो मरहबा कहते हो उस,
दाद और तहसीन का भी शुक्रिया।
जान देकर काम आया आपके,
दिल को कर पाया मुतास्सिर शुक्रिया।

हमारी जान को बीमारियाँ बहुत सी हैं

जहन, बदन, रूह, दिल यारियाँ बहुत सी हैं।
हमारी जान को बीमारियाँ बहुत सी हैं।
उदास दिल है, नजर गुम, टूटती सांसें,
मिरे मिजाज की तैयारियां बहुत सी हैं।
दगा, फरेब, जफा, खार, जार, खामोशी,
अगल-बगल में तिरे आरियाँ बहुत-सी हैं।
बलाएं, वक्त, मुसीबत, ओ ठोकरें, आफत,
सबक सिखाने को दुश्वारियां बहुत-सी हैं।
यहाँ है पीरी, जवानी आ दौर ए बचपन,
ये ज़िन्दगी है यहाँ पारियां बहुत-सी हैं।
(पीरी - बुढ़ापा)

जिसने रखी है नाप के खुशबु गुलाब में

किसने कहा की खूबियाँ हैं बेहिसाब में।
दीपक तले अँधेरा है तू हर हिसाब में।
पूछा कि दाग कैसे हुआ माहताब में,
उड़ कर हवा से आ गया पत्थर जवाब में।
तुममे रही न बात वो पहली रही है जो,
होते थे तुम शुमार कभी लाजवाब में।
कितना अजीब ख़्याल है कुदुरत का ख़्याल भी,
जिसने रखी है नाप के खुशबु गुलाब में।
कलरात कुछ हुआ यूं कि बंद हो गई जबान,
मुझको लगा कि जैसे ये दिल है दबाव में।
पन्ना जो आखिरी हो वो होता है रफ मगर,
होता है शायराना वही तो किताब में।

नरेश शांडिल्य

सब-सा दिखना छोड़कर, खुद-सा दिखना सीख

छोटा हूँ तो क्या हुआ, जैसे आँसू एक।
सागर जैसा स्वाद है, तू चखकर तो देख।।
देखा तेरे शहर को, भीड़ भीड़ ही भीड़।
तिनके ही तिनके मिले, मिला न कोई नीड़।।
कतरा-कतरा घुल रही, घर-घर बूढ़ी आँख।
बेटे-बहुओं को लगे, सुरखाबों के पांख।।
सब कुछ पलड़े पर चढ़ा, क्या नाता क्या प्यार।
घर का आँगन भी लगे, अब तो इक बाजार।।
मैंने देखा देश का, बड़ा सियासतदान।
न चेहरे पर आँख थी, न चेहरे पर कान।
जागा लाखों करवटें, भीगा अश्क हजार।
तब जाकर मैंने किए, कागज काले चार।।
मैं खुश हूँ औजार बन, तू ही बन हथियार।
वक्त करेगा फैसला, कौन हुआ बेकार।।

सब-सा दिखना छोड़कर, खुद-सा दिखना सीख।
संभव है सब हों गलत, बस तू ही हो ठीक।।
तू पत्थर की ऐंठ है, मैं पानी की लोच।
तेरी अपनी सोच है, मेरी अपनी सोच।।
लौ से लौ को जोड़कर, लौ को बना मशाल।
क्या होता है देख फिर, अँधियारों का हाल।।
आसमान के जोश में, रख धरती का होश।
कटकर अपने मूल से, बढ़ा न कोई कोश।।
जिसके उर में आग है, उसके सुर में राग।
सूरज सदा जगाएगा, जाग भले ना जाग।।
जीता तो तेरी धरा, हारा ते आकाश।
शंख फूँक अब युद्ध का, काट भरम का पाश।।
मैंने 'है' को 'है' कहा, नीयत रखकर नेक।
अब यह तेरा काम है, सही-गलत तू देख।।

बेटी गंगा की लहर, बेटी यमुना नीर

गली-गली में खुल गया, कातिल नर्सिंग होम।
देख अजन्मी सांस का, कांप रहा है रोम।।
बेटी छीर समुद्र है, बेटी मन की प्रीत।
भावों को मथकर मिला, मुझको यह नवनीत।।
बेटी गंगा की लहर, बेटी यमुना नीर।
बेटी की तकदीर से, बाबुल की तकदीर।।
बेटी आंगन की खनक, दरवाजे का दीप।
बेटी स्नेह-सुगंध से, महकाती घर लीप।।
बेटी कभी न खोलती, अपने मन की पीर।
संघर्षों के सामने बन जाती प्राचीर।।
सब जब होगा देश में, बेटी के अनुकूल।
गमकेंगे हर द्वार पर, गुलमोहर के फूल।।
संघर्षों की आजकल, यह कैसी पहचान।
बेटी क्यों अभिशाप है, बेटा क्यों वरदान।।
पिता पालते प्रेम से, अपनी हर संतान।
पर मौके पर बदलता, बेटे का ईमान।।
क्यों बेटे से बेटियां, कम पाती हैं प्यार।
जब बेटा ही छीनता, बापू का अधिकार।।
जिसने बेटों पर किया, जीवन में विश्वास।
उसके हिस्से का बिका, पल-पल में मधुमास।।
हत्या होती भ्रूण की, अपनेपन का खून।
क्या कर पाता बैठकर, कुर्सी पर कानून।।
ममता का इस देश में, यह कैसा सम्मान।
कपड़े में अब भ्रूण को, नोच रहा श्वान।।
बेटी पर क्यों टूटता, दुख का सदा पहाड़।
कभी दीखती बाढ़ तो, कभी झाड़-झंखाड़।।
बेटी के संसार में, क्यों हर पल विध्वंस।
यहां-वहां, चारो तरफ, दंस, दंस औ' दंस।।

डॉ. मुधुसूदन साहा

कुँअर बेचैन

बंध जाएँ तो प्रेम है, अलग रहें तो जंग

पानी ने मानी नहीं, कभी द्वैत की बात।
कभी न आरी से कटा, काटो तुम दिन रात।।
बोलो फिर कैसे कटे, यह जीवन की रात।
सुना रहा है हर कोई, बस मुर्दों की बात।।
स्वस्थ समर्थन है कठिन, खंडन है आसान।
बनने में सदियाँ लगें, गिरने में पल जान।।
राजनीति बंदूक है, कविता एक सितार।
ठाँय-ठाँय है इस तरफ, उधर मधुर झंकार।।
सात गगन, ये सात स्वर, सप्त वचन, नवरंग।
बंध जाएँ तो प्रेम है, अलग रहें तो जंग।।
प्रतिभा का लक्षण यही, पद चाहे ना मोल।
सबके मन में नाचती, बिना बजाए ढोल।।
राजनीति ये खेलती, कैसे-कैसे खेल।
सदा प्रेम पर तानती, नफरत-भरी गुलेल।।
सर पर जलती आग है, पैरों में भी आग।
नफरत के इस नर्क से, भाग सके तो भाग।।
निंदा का काला धुआँ अंधर देय बनाय।
और प्रशंसा, ज्योति का, सुंदर सरल उपाय।।
जहाँ त्याग का त्याग है, वहाँ लोभ ही लोभ।
और लोभ का मन जहाँ, वहाँ क्षोभ ही क्षोभ।।
प्रेम खिला इक फूल है, खुशबू बाँटे जाय।
प्रेम एक जलता दिया, सदा ज्योति बिखराय।।
जहाँ काम है, लोभ है, और मोह की मार।
वहाँ भला कैसे रहे, निर्मल पावन प्यार।।
प्रेम और प्रिय प्रार्थना, एक भाव दो रूप।
भेद-भाव इनमें नहीं, दोनों भाव अनूप।।
तन का सुख ज्यों धूप में, इक छतरी की छाँव।
किंतु आत्म-आनंद है, नित हरियाला गाँव।।
योग और शुभ ध्यान के, लेकर ये दो पाँव।
बिना चले चलते रहो, मिल जाएगा गाँव।।
वर्तमान तो ब्रह्म है, आगत माया-रूप।
इक तो सर पर छाँव है, दूजा सर पर धूप।।
पथ के पत्थर से 'कुँअर', यह ही एक बचाव।
उन्हें बनाकर मील का, पत्थर रखते जाव।।

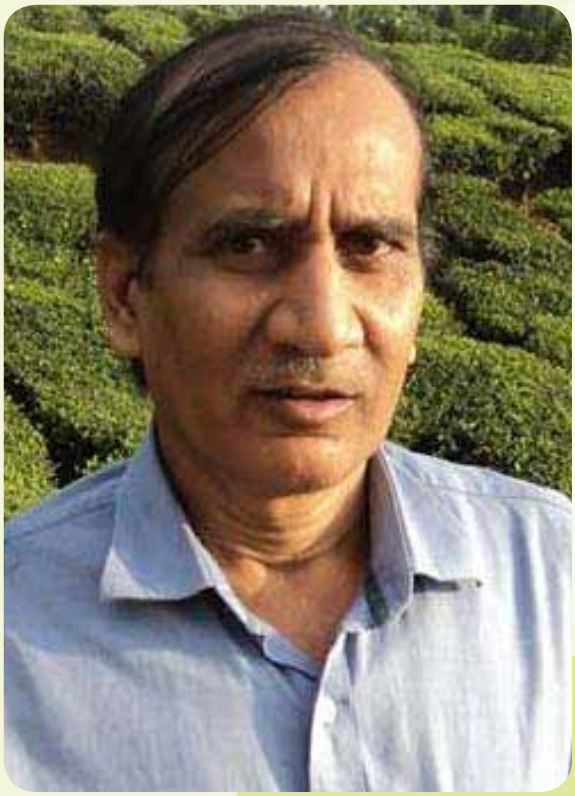

जगदीश व्योम

कविता के बाजार में, घसियारों की भीड़

आहत है संवेदना, खंडित है विश्वास।
जाने क्यों होने लगा, संत्रासित वातास।।
कुछ अच्छा कुछ है बुरा, अपना ये परिवेश।
तुम्हें दिखाई दे रहा, बुरा समूचा देश।।
सब पर दोष लगा रहे, यही फकत अफसोस।
दोषी सब परिवेश है, या आँखों का दोष।।
सब की कमियाँ खोजते, फिरते हो चहुँ ओर।
कभी-कभी तो देख लो, मुड़कर अपनी ओर।।
जब-जब किसी अपात्र का, होता है सम्मान।
तब-तब होती सभ्यता, दूनी लहू-लुहान।।
बौने कद के लोग हैं, पर्वत से अभिमान।
जुगनू अब कहने लगे, खुद को भी दिनमान।।
कविता निर्वासित हुई, कवियों पर प्रतिबंध।
बाँच रहे हैं लोग अब, लूले-लंगड़े छंद।।
कौन भला किससे कहे, कहना है बेकार।
शकरकंद के खेत के, बकरे पहरेदार।।
बदला-बदला लग रहा, मंचों का व्यवहार।
जब से कवि करने लगे, कविता का व्यापार।।
कविता के बाजार में, घसियारों की भीड़।
शब्द भटकते फिर रहे, भाव हुए बे-नीड़।।
मन की गहरी पीर को, भावों में लो घोल।
गीत अटारी में चुनो, शब्द-शब्द को तोल।।

लाल किला बुनता रहा, वादे, भाषण, भीड़

ताकि भोगत रह सकें, सिंहासन का संग।
स्वयं युधिष्ठर रंग गये दुःशासन के रंग।।
क्या कोई देखे वहाँ, सपनों की तस्वीर।
जुगनू लिखते हों जहाँ, सूरज की तकदीर।
छौनों के सपने छिने, गौरेयों के नीड़।
लाल किला बुनता रहा, वादे, भाषण, भीड़।।
भूख लपेटे पेट पर, और होंठ पर प्यास।
पंख-नुचे सपने लिये, सिसक रहा इतिहास।।
सरे आम भूने गये, नित असहाय, अबोध।
दिल्ली रही बघारती, एक नपुंसक क्रोध।।
राजा जी तुम भोगते, हर सुविधा का भोग।
किंतु हमारे वास्ते, नये-नये आयोग।।
बुलबुल कारावास में, पहरे पर सैयाद।
अब होने को क्या बचा, यह होने के बाद।।

जय चक्रवर्ती

केवल प्रसाद 'सत्यम'

उनकी किस्मत में नहीं, प्रजातंत्र का योग

बिछी बिसातें हैं भ्रमित, होगी कैसे मात।
हाथी-घोड़ा-ऊँट की, करे न रानी बात।।
प्रेम युद्ध जब-जब हुए, लेकर नयन कटार।
चारों ही घायल मिले, बेबस दिल के द्वार।।
दिल ने दिल को दिल दिया, दिल से करके बात।
दिल दीवाना हो गया, करके दिल से घात।।
मैं चन्दन घिस-घिस सदा, रहा संत के संग।
और अड़े वन में वही, प्रिय थे जिन्हें भुजंग।।
द्वेष और संकीर्णता, जिनके मूल विचार।
वह उन्नति की नाव में, बैठे बिन पतवार।।
मैं अक्षर माला लिए, और भारती भाव।
हिंदी में लिखता रहा, मूंछों पर दे ताव।।
श्वांस-श्वांस बस श्वांस ही, करता प्रेम प्रसार।
और बिना इक श्वांस के, जीव जगत बेकार।।
चन्दन से चन्दन कहे, मैं घिस हुआ प्रमोद।
घिसा नहीं वह लट्ठ सम, गया चिता की गोद।।
गुब्बारों में श्वांस जो, भर-भर बेचें लोग।
उनकी किस्मत में नहीं, प्रजातंत्र का योग।।
भूख गरीबी श्रम लिए, चुनती योगी-योग।
बदले में उसको मिले, केवल रोग-वियोग।।
दस रुपये की खाल जो, तन से लिया उतार।
वही दधीची की तरह, देख रही उस पार।।
देश-प्रेम सब में रहे, लिए तिरंगा केतु।
कचरों में भी ढूंढते, जो जीवन के सेतु।।
मजदूरी सबसे कठिन, फलती केवल बीस।
लज्जित भी होकर कभी, दिखी नहीं उन्नीस।।

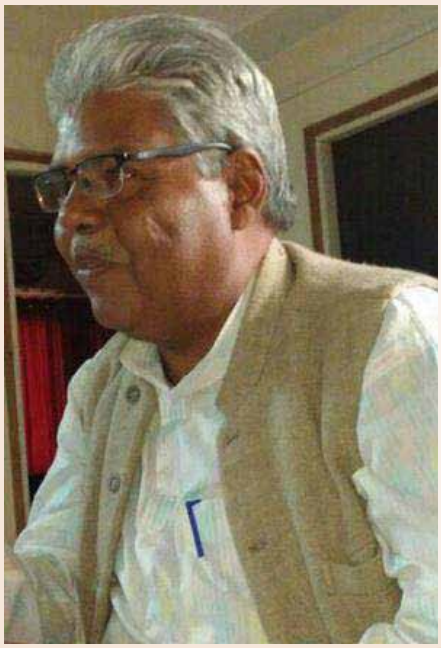

दिनेश चन्द्र गुप्ता 'रविकर'

मंडी में मंदी अजब, मुफ्त मिले ईमान

रहा जिन्हें अखबार में, छपा-छपी का चाव।
ज्यादातर बिकते दिखे, कल रद्दी के भाव।।
युगोंयुगों से खास जन, रहे चूसते आम।
रविकर रहे वसूल फिर, गुठली के भी दाम।
मेरे रोने पर हँसी, माँ केवल इक बार।
लेकिन अब हँसती नहीं, महिमा अपरम्पार।।
सन्धि भले से कर भले, व्यर्थ बुरे से तर्क।
अर्थ-पूर्ण हर मौन से, पड़े शोर पर फर्क।।
कभी सुधा तो विष कभी, मरहम कभी कटार।
आडम्बर फैला रहे, शब्द विभिन्न प्रकार।।
मेरे मोटे पेट से, रविकर-मद टकराय।
कैसे मिलता मैं गले, लौटा पीठ दिखाय।।
मंडी में मंदी अजब, मुफ्त मिले ईमान।
घटी दरों पर जब बिके, तथाकथित इन्सान।।
जिंदादिल को कब हुई, निंदा सुन तकलीफ।
मुर्दे ही सुनते सतत, झूठ-मूठ तारीफ।।

रे मन सब की कर फिकर, मनसब की रट छोड़।
नित्य लोकहित छंद रच, कुल जन-गण-मन जोड़।।
छपने का अखबार में, जिन्हें रहा था चाव।
समय बीतने पर बिके, वे रद्दी के भाव।।
भेड़-चाल में फिर फँसी, पड़ी मुफ्त की मार।
सत्ता कम्बल बाँट दे, उनका ऊन उतार।।
गारी चिंगारी गजब, दे जियरा सुलगाय।
गा री गोरी गीत तू, गम गुस्सा गुम जाय।।
रोटी सा बेला बदन, अलबेला उत्साह।
माता हर बेला सिके, रही देह नित दाह।।
करे शशक शक जीत पर, कछुवा छुवा लकीर।
छली गयी मछली जहाँ, मेढक ढका शरीर।।
करे कदर कद देख के, जहाँ मूर्ख इंसान।
निरंकार-प्रभु को भला, ले कैसे पहचान।।
अपने मुँह मिट्ठू बनें, किन्तु चूकता ढीठ।
नहीं ठोक पाया कभी, वह तो अपनी पीठ।।

लक्ष्मीशंकर वाजपेयी

वे लोग

डिबिया में भरकर पिसी हुई चीनी
तलाशते थे चींटियों के ठिकाने
चतों पर बिखेरते थे बाजरा के दाने
कि आकर चुगें चिड़ियाँ
वे घर के बाहर बनवाते थे
पानी की हौदी
कि आते जाते प्यासे जानवर
पी सकें पानी
भोजन प्रारंभ करने से पूर्व
वे निकालते थे गाय तथा अन्य प्राणियों का हिस्सा
सूर्यास्त के बाद, वे नहीं तोड़ने देते थे
पेड़ से एक पत्ती
कि खलल न पड़ जाए
सोये हुए पेड़ों की नींद में
वे अपनी तरफ से शुरू कर देते थे बात
अजनबी से पूछ लेते थे उसका परिचय
जरूरतमन्दों की करते थे
दिल खोल कर मदद
कोई पूछे किसी का मकान
तो खुद छोड़ कर आते थे उस मकान तक
कोई भूला भटका अनजान मुसाफिर
आ जाए रातबिरात
तो करते थे भोजन और विश्राम की व्यवस्था
संभव है, अभी भी दूरदराज किसी गाँव या कस्बे में
बचे हों उनकी प्रजाति के कुछ लोग
काश ऐसे लोगों का
बनवाया जा सकता एक म्यूजियम
ताकि आने वाली पीढ़ियों के लोग
जान सकते
कि जीने का एक अन्दाज ये भी था।

भीड़ का सैलाब

अच्छा-भला आदमी था
सीधा-सादा, बाल-बच्चेदार, घर-गृहस्थ
कुछ नारे उसे हांक कर भीड़ में ले गए
और उसे भी क्या सूझी
कि अचानक आदमी से
'भीड़' में बदल गया
और भीड़ का सैलाब थमने के बाद
उसने पाया अपने आप को
एक अस्पताल के मुर्दाघर में
अपने पहचाने जाने का इंतजार करते हुए।

प्रार्थना

उन सारी प्रार्थनाओं का मतलब क्या है
जिनके होने के बाद भी
वही सब होता रहे
जिसके न होने के लिए
की जाती हैं प्रार्थनाएँ
मैं एक कोशिश और करता हूँ
और प्रार्थनाएँ सुनने वालों
और करता हुँ प्रार्थना
कि प्रार्थनाएँ
कभी बेकार न हों!

जंगली

उनके धर्मपीठ में जाने के बाद
एक बोला- हम यादव वंश के,
दूसरे ने कहा- हम सेटल्ड खानाबदोश,
तीसरा रोया- ढालिया है तो क्या हुआ,
चौथा हंसा- हम लंबाड़े अंधेरों के।
ये सब सुनने के बाद-
फिर भी तुम सब जंगली कैसे हो?
वे सब एक-दूसरे को निहारने लगे,
लगा, अरे ये तो केवल हड़प्पा के कंकाल।
उत्तर की खोज में वे घुसे म्यूजियम में,
कहते हैं, वहां से वे लौटकर नहीं आए।

बरसात

आ री आ री बरसा, मेरे पास नहीं पैसा।
मैं पड़ूंगा झूठा, और तुम हो जाओगी बड़ी
तब छुप जाओगी, छकाओगी, थकाओगी,
और जब आओगी सबको भिगोती
मेरी झोपड़ी की अंखियां
हजार आंसू पोंछने कौन आएगा री,
आ री आ री बरसा।

भुजंग मेश्राम

होली

ढालिया डफ बजाता है,
डिकचैंग डिंकचैंग डैंग डैंग....
तब उसे आरती के संग मिलती है गाली,
मायके आई साली संवारती है घाघरा,
नाइक बजाता है सातबारा,
उसे गाली बिना मिलता है आलिंगन
और नाइक को चंदा।
अकाल पड़ा था
तब आया था त्योहार होली का
किताबों में लिखा इतिहास कहता है।
नाइक बोलता है-
अकाल पड़ने से क्या होता है,
खरी-होली हमारी ही-
उपले चुराओ, लकड़ियां भी
पर होली हो तगड़ी।
अचानक डफ की लय होती है उल्टी,
ढालिया के डफ पर
सुलगती चिंगारी।

(मराठी से अनूदित 'गोरमाटी' की कविताएं)

तब कहां होती है स्त्री

सिमटा होता है पूरा घर
फिर भी और समेट कर होने की चाह रखती है स्त्री,
बिखरा होता है उसका वजूद घर के कोने-कोने में
और उसमें परायी-परायी सी होती है वह,
जिन्दगी जितनी भी तहों में दबा दे,
भीगी आँखों से हंसती, खिलखिलाती रहती है,
कहीं तन ढकने को नहीं, कहीं तन ढकना नहीं,
उम्र कोई भी हो, जायके का सामान होती है वह,
उम्र भर ढूंढती रहती है अपने मन का आशियाना
जैसे अपने वजूद में मकड़ी सी हो,
धरती-सी सह लेती है प्रसव-पीड़ा, अकेले ही भीतर
तब माँ होती है स्त्री,
जिन्दा मार दी जाती है कोख में बेमौत,
न बहन, न माँ, न बेटी, तब कहां होती है स्त्री!

नीलिमा शर्मा निविया

कुमार विजय गुप्त

अकेले अंगूठे के टेक पर

एक अकेला अंगूठा,
एक अकेले अंगूठे ने,
वसीयत कर दीं सारी अंगूठियां
उंगलियों के नाम।
रोका, गालों पे लुढ़कते हुए
आंसू की असंख्य बूंदों को,
एक अकेले अंगूठे ने,
उंगलियों के गासे में भरा हुनर
तल्हत्थियों को दी बित्ताभर लंबाई
हथेलियों को भर-मुट्ठी क्षमता
आकाश के ललाट पे बढ़कर लगाया
'विजयी भव' का सूर्य-तिलक!
अंगूठे को पिस्टन बनाकर
हमने भी कई बार उगलवाया,
डबडबाये हुए नल के हलक से पानी
शरारती हुए तो काटी चिकोटी,
मस्ती में आये तो बजायी चुटकी,
अफसोस !

इसी अंगूठे से लिया गया
कोरे कागज पे काला टिप्पा
रची गयी हर बार
जीने के हक से बेदखल करने की साजिश
अंगूठे का दर्द वो ही जाने
जिन्होंने जमीन में धंसाया अंगूठा
हल के फाल की तरह
और खांच दी चाहतों की क्यारियाँ
एकलव्य का कटा हुआ अंगूठा,
दर्द के संबोधन चिन्ह की तरह
एक बार जरुर खड़ा हुआ होगा
द्रोण के समक्ष भी
इधर अंगूठे ने भी बदले तेवर
दायें-बायें डोलकर सिर्फ दिखाता नहीं ठेंगा
बल्कि सफलीभूत होनेपर तनकर कहता 'डन'।
ज्यों नाचता लट्टू लोहे के गुने पर
घूमती रहेगी पृथ्वी
अकेले अंगूठे के टेक पर!

कंधे

अपनी नवनिर्मित मूरत के कंधे पर टिकाकर हाथ,
मूर्तिकार झांकता उसकी आँखों में,
और आश्वत हो जाता अपनी कला के प्रति,
गर देखें तो कंधे सीधा-सपाट अंग योजक,
गर सोचें तो कंधे बिन अधूरी देह कल्पना,
कंधे से जुड़े हाथ,
हाथ की हथेलियों से फूटतीं उंगलियां,
उंगलियों के गासे में समस्त सृजन संभावनाएं,
गर उठा लें हाथ सीधा और फैला लें उंगलियां
तो हाथ दीखता वृक्ष-सा हरियाली रचता हुआ,
इस हाथ जड़ की जड़ें धंसी हुईं कंधे की मिट्टी में,
गर उठाकर हाथ सीधा बाँध लें मुट्ठी,
तो हाथ बन जाता मशाल उजियारा फैलाता हुआ।
इस हाथ मशाल की मूंठ जैसे कंधे थामें हाथ जैसी देह
तब देह हुई पृथ्वी जिसके हाथ हम
शब्द-बाणों से अटे।
तरकस टांगने के लिये नहीं होते कंधे, खूंटियों जैसे,
न ही , वाक्य -मरीचिकाओं से लैस,
कुछ खास किस्म के लिबास लटकानेवाले 'हंगारों' जैसे
कि कंधे पर उठाये जा सकते बोझ दृश्य-अदृश्य
कि थपकाकर कंधे उगाए जा सकते हौसले
कि बिठाकर कंधे पर बच्चों को
दिखाये जा सकते भालू-बंदर के नाच,
घुमाए जा सकते दूर-देहात के मेले
हताश निराश होते जब हम कभी,
तो ढूँढते सिर टिकाने के लिये अपना-सा कोई कंधा
कहाँ टिकी होती दुनिया जो नहीं होते कंधे!
जबकि कितना बुरा लगता है उस वक्त
जब किसी महापुरुष के कंधे पर बैठा हुआ पंछी
उड़ जाता है करके 'बीट'।
मित्रो , कंधे कदापि नहीं होते
चलाने के लिये बन्दूक रखकर दूसरों के कंधे पर
बल्कि कंधे होते
आगे बढ़ने के लिये मिलाकर कंधा, कंधे से
कि इन्हीं उदात्त कंधों पर तय होगा
जीवन का अंतिम सफर!

हे राम

देवाशीष आर्य

कैसे हो राम, सुना है, अब भी रहते हो वहीं,
अपने जन्मस्थान अयोध्या में,
तिरपाल से ढंके और घिरे
खैनी ठोंकते सिपाहियों की गारद से
जो रहती है तैनात एक बड़ी बैरिकेटिंग के भीतर .
सुना है, अब तुम किसी से नहीं बोलते,
चुपचाप पलटते रहते हो
अपने पुराने पारिवारिक एल्बम को
जब तुम्हारे बच्चे तुम्हारे साथ थे,
और तुम्हारा मकान दुरुस्त
बात ज्यादा पुरानी नहीं
जब तुम्हारे बच्चों ने लिया था संकल्प
बनाने को तुम्हारा मकान नया और मजबूत,
लाउडस्पीकरों पर दोहराई थीं शपथें
और फैलाया था सन्देश सातों दिशाओं में
रथ पर होकर सवार,
देश भर से मंगाई थीं ईंटें और एक दिन
ध्वस्त कर दिया था पुराने मकान को
जिसके प्याजाकृति गुम्बद मेल नहीं खाते थे
तुम्हारे बच्चों के मिजाज से,
पुराने मकान के गिरने से उड़ी थी धूल
जिसके गुबार से ढँक गया था आसमान,
उस धूल में जहर था, जिसने निगल लिया था बहुतों को
अयोध्या में, गोधरा में, गुजरात में, मुम्बई में
और भी न जाने कहाँ कहाँ।
खैर, और सुनाओ, कैसे काटते हो
सर्दी, गर्मी और बरसात चिमड़े से तिरपाल में,
क्या तुम तक आती है साफ धूप और ताजा हवा,
तुम्हारे मकान का केस तो है न्यायपालिका के पास
फाइलों में धूल फांकता और तुम्हारे बच्चे हैं व्यस्त
अंकीकरण और मुद्रारहित अर्थव्यवस्था को
अमली जामा पहनाने में,
तुम्हारे मकान का मुद्दा अब प्राथमिकताओं में नहीं आता,
मुद्दे बदल चुके हैं और तुम फेंक दिए गए हो
कचरे के डिब्बे में, डिस्पोजेबल गिलास की तरह।
हे राम, पिछले दिनों छपी थी
तुम्हारी एक ताजा तस्वीर अखबार में,
जिसमें कैमरे की आँख में झांकते
पुराने सूट में मुस्कुरा रहे थे तुम,
मैं नहीं जानता कि क्या साबित करना चाहते हो तुम,
पर सूर्यास्त के देर बाद जब चुप हो जाता है बाजार
और छाता है सन्नाटा अयोध्या में आधी रात
तब सारा शहर सुनता है तुम्हारी सिसकियाँ साफ-साफ।
हे राम, अयोध्या के लोग बताते हैं कि तुम बदल गए हो
एक सनकी चिड़चिड़े बूढ़े में
जो नहीं मिलता किसी से, बस पथराई आँखों से
देखता रहता है शून्य में
और बड़बड़ाता रहता है अपने आप से
और कभी कभी बकता है बड़ी गन्दी गालियाँ।
हे राम, बहुत हुआ तुम्हारे बच्चे भूल चुके हैं तुम्हें
और कोई इरादा नहीं दिखता उनके वापस आने का,
अब तुम्हें मर जाना चाहिए,
हमारा वादा है कि हम बदल देंगे
तुम्हारे जन्मस्थान को एक खूबसूरत स्मारक में
और तुम्हारी जयंती पर लाद देंगे उसे फूल और मालाओं से,
उस दिन राजकीय अवकाश रहेगा
और स्कूली बच्चे आएंगे कतारबद्ध श्रद्धा सुमन चढ़ाने,
जहाँ गाइड बताएगा मेगाफोन पर,
आइये साहेबान, देखिये यही है वो जगह
जहाँ रहता था राम,
जिसके बच्चे चले गए उसे छोड़कर।

राजधानी दिल्ली में 'कविकुंभ' प्रकाशनोत्सव एवं बीइंग वूमेन वार्षिकोत्सव 'फलक- 2017'

नवधनाढ्य हस्तक्षेप से कविता विस्थापित : माहेश्वर तिवारी

समारोह में पद्मश्री लीलाधर जगूड़ी, पद्मश्री अशोक चक्रधर, असगर वजाहत, पद्मश्री पद्मा सचदेव, बालस्वरूप राही, जहीर कुरैशी, डॉ.नुसरत मेंहदी, राज शेखर व्यास, डॉ. लक्ष्मीशंकर वाजपेयी, डॉ.मोहम्मद आजम, डॉ.शकील जमाली, रहमान मुसव्विर आदि का विशेष संबोधन

जयप्रकाश त्रिपाठी

दिल्ली के इंडिया इंटरनेशनल में आयोजित साहित्यिक मासिक 'कविकुंभ' के प्रकाशनोत्सव मंच पर दीप प्रज्ज्वलित कर कार्यक्रम का प्रारंभ करते शीर्ष नवगीतकार डॉ. माहेश्वर तिवारी, साथ में कवि लीलाधर जगूड़ी, अशोक चक्रधर, राजशेखर व्यास आदि। दूसरे चित्र में 'बीइंग वूमेन' के 'स्वयं-सिद्धा सम्मान समारोह फलक : 2017' का शुभारंभ करतीं उत्तर प्रदेश हिंदी संस्थान की कार्यक्रम अधिकारी एवं संपादक डॉ.अमिता दुबे, साथ में बीइंग वूमेन की राष्ट्रीय अध्यक्ष एवं 'कविकुंभ' की संपादक रंजीता सिंह 'फलक'।

'कविकुंभ' प्रकाशनोत्सव की एक झलक : (बाएं से) पवन अग्रवाल, डॉ. अशोक चक्रधर, डॉ. एस. फारुख, रंजीता सिंह '.फलक' लीलाधर जगूड़ी, जयप्रकाश त्रिपाठी, डॉ. माहेश्वर तिवारी, डॉ.रामगरीब पांडेय विकल, असगर वजाहत, इच्छाराम द्विवेदी, प्यासा अंजुम, डॉ. पूरनचंद्र, जहीर कुरैशी, लक्ष्मीशंकर वाजपेयी, डॉ.मोहम्मद आजम, महेश कटारे सुगम एवं नितिन कुमार 'सबरंग'।

'कविकुंभ' प्रकाशनोत्सव को सम्बोधित करते हुए (बाएं से) डॉ. माहेश्वर तिवारी, लीलाधर जगूड़ी, असगर वजाहत, डॉ.लक्ष्मी शंकर वाजपेयी, डॉ. राजशेखर व्यास, डॉ. नुसरत मेंहदी, रंजीता सिंह .फलक, डॉ. पूरन चंद्र, रहमान मुसव्विर, नरेश शांडिल्य, डॉ. मोहम्मद आजम, शकील जमाली, डॉ. इच्छाराम द्विवेदी एवं डॉ. अमिता दुबे।

राजधानी दिल्ली के इंडिया इंटरनेशनल सेंटर में मासिक हिंदी पत्रिका 'कविकुंभ' के प्रकाशनोत्सव एवं 'बीइंग वूमेन' के स्वयं-सिद्धा सम्मान समारोह में देश के जाने-माने कवि-लेखक, शायर-शायरा, कवयित्रियों ने बड़ी संख्या में सहभाग किया। प्रकाशनोत्सव के प्रथम सत्र को संबोधित करते हुए वयःश्रेष्ठ कवि एवं प्रथम सत्र के अध्यक्ष माहेश्वर तिवारी ने कहा कि साहित्यिक मंचों का समय अब पहले जैसा नहीं रहा। इस जमाने में नवधनाड्य वर्ग ने कविसम्मेलन के मंचों की श्रेष्ठता के स्वरूप को पैसे की ताकत से बदल दिया है। वहां से कविता विस्थापित की जा रही है। इससे मंच की गरिमा ढह रही है। अच्छे रचनाकारों को इस ओर से सचेत और सक्रिय होना होगा, तभी सीधे संवाद के लिए कवियों को जागरूक श्रोता उपलब्ध हो सकेंगे।

पद्मश्री लीलाधर जगूड़ी ने कहा कि कविता शब्दों के बाहर भी होती है। कविता एक दृष्टि है। इससे व्यक्ति की सोच में परिवर्तन आता है। कविता हजार तरह की होती है। इसे भिन्न-भिन्न होना भी चाहिए। भाषा मनुष्य ने बनाई है। भाषा नहीं, विचार मुख्य होता है। कवि होना अभिशप्त होना है। कहा जाता है- कविरेक प्रजापति। कविता की रचना ब्रह्म करता है। उसकी रचना मनुष्य है। यही उसकी कविता है। कविता को अन्याय का प्रतिरोध करना चाहिए। कथन विशेष ही कविता होती है। उसका प्रकृति से संवाद होता है।

प्रसिद्ध साहित्यकार असगर वजाहत ने कहा कि कविता मानव से मानव को जोड़ती है। कविता के विभिन्न स्तर हैं। और सभी महत्वपूर्ण हैं। मंचीय कविता और साधारण कविता में कोई विशेष अंतरविरोध नहीं है। हमारे यहां अनपढ़ व्यक्ति भी कविता को समझता है। ग्रहण करता है।

जाने-माने गजलकार जहीर कुरैशी ने कहा कि कविता कोई उत्पाद नहीं है। जो दिल को छू जाए, वही कविता है। कविता अगर कहानी या निबंध की तरह होगी तो नीरसता आएगी। तुकबंदी के उत्पाद की बजाए कविता का सरोकार हृदय से होना चाहिए। शायर एवं प्रसिद्ध उर्दू अदीब डॉ.मोहम्मद आजम ने कहा कि बेहतरीन शब्दों का कुशल संयोजन ही कविता है। डॉ.शकील जमाली ने कहा कि कविता हृदय पर जमी बर्फ को तोड़ती है। रहमान मुसव्विर का कहना था कि कविता हृदय का नृत्य है।

कवि अशोक चक्रधर ने कहा कि साहित्य और मंच साथ-साथ नहीं हो सकते। 'कविकुंभ' का महत्व महाकुंभ से अधिक है। स्वस्थ साहित्य की दिशा में 'कविकुंभ' के प्रयास सराहनीय हैं। पत्रिका में नए कवियों को महत्व मिले तो बेहतर होगा। दिल्ली आकाशवाणी के निदेशक एवं कवि डॉ. लक्ष्मीशंकर वाजपेयी ने कहा कि कविता में दो सम्प्रदाय हो गए हैं, छंदमुक्त और छंदयुक्त। निराला ने जनसंवाद के लिए छंद तोड़ा था। 'कविकुंभ' की पहल दुखती रग को छूने का प्रयास है। उन्होंने कहा कि संगीत या कला को अमीरों के ड्राइंग रूम की रौनक न बनाकर आम आदमी तक पहुंचाना होगा। कविता, कला, संगीत मनुष्यता की आखिरी उम्मीद हैं।

दूरदर्शन के एडिशनल डाइरेक्टर राजशेखर व्यास ने कहा कि कविता रेत में तड़पती हुई मछली है, जो सरोवर की आस्था को जन्म देना चाहती है। कविता हृदयग्राही होनी चाहिए। ऐसा नहीं होना चाहिए कि तू मुझे छाप, मैं तुझे छापूं। नेहरू चाहते थे कि अपने जीवन को वह एक कविता बना लें। कविता जगाने का नाम है। मुस्कराहट भी एक कविता है।

कृषि मंत्रालय में राजभाषा विभाग के सहायक निदेशक डॉ.पूरन सिंह ने कहा कि मंचों, पत्र-पत्रिकाओं, किताबों में साहित्यिक हलचलें जितनी तेज हैं, उसे सड़क के आम आदमी की जिंदगी से भी साझा होना चाहिए। साहित्यिक उत्सवों और समारोहों में उनकी बात सबसे पहले होनी चाहिए, क्योंकि मनुष्यता साहित्य का प्रथम सरोकार है।

'कविकुंभ' की संपादक रंजीता सिंह '.

फलक' ने कहा कि यह पत्रिका हिंदी-उर्दू के यशस्वी कवि-साहित्यकारों के साथ ही विशेषतः उन उदीयमान एवं संभावनाशील युवा कवि-कवयित्रियों का देशव्यापी माध्यम बन रही है, जिनके शब्द बेहतर लिखने के बावजूद हाशिये पर कर दिए जाते हैं। हम उन्हें 'कविकुंभ' में पूरी प्राथमिकता से अवसर देना चाहते हैं। पत्रिका में साहित्यिक समारोहों के गिरते स्तर पर 'कविकुंभ' में लगातार हिंदी पट्टी के दशाधिक राज्यों में स्वर-संवाद चला रहे हैं। उसमें हर वर्ग के कवि-शायर सहभाग कर रहे हैं। हमारा प्रयास होगा कि मंचों के हाशिये पर कर दिए गए उन रचनकारों को प्राथमिकता और सम्मान मिले, जिन्हें पढ़ते-सुनते हुए एक पूरी पीढ़ी जवान हुई है। उनमें से हमारे कई वरिष्ठ यहां उपस्थित हैं। हम आगे भी ऐसे कार्यक्रम हर राज्य में आयोजित करने का प्रयास करेंगे। इतने कम समय में 'कविकुंभ' का सुधी पाठक वर्ग देश के 17 राज्यों से हमारा मार्ग दर्शन करने लगा है।

उनके अलावा प्रथम सत्र को पद्मश्री पदमा सचदेव, बालस्वरूप राही, डॉ. इच्छाराम द्विवेदी, नरेश शांडिल्य, हिमालय ड्रग कंपनी के डाइरेक्टर डॉ. एस फारुख, प्रभात प्रकाशन के प्रमुख पवन अग्रवाल, मध्य प्रदेश उर्दू एकेडमी की सचिव एवं प्रसिद्ध शायरा डॉ. नुसरत मेंहदी, जम्मू के शायर प्यासा अंजुम, मध्यप्रदेश के कवि डॉ.रामगरीब पांडेय विकल, राही भोजपुरी, उत्तराखंड के कवि नितिन कुमार सबरंग, इटावा के कवि देवाशीष आर्य एवं कुमार मनोज, बुंदेली कवि महेश कटारे सुगम आदि ने भी संबोधित किया। कार्यक्रम का संचालन बीइंग वूमेन की राष्ट्रीय अध्यक्ष एवं 'कविकुंभ' की संपादक रंजीता सिंह 'फलक' ने किया। इस अवसर पर जसवीर सिंह 'हलधर' के कविता संकलन 'शंखनाद' का भी विमोचन किया गया। कार्यक्रम में देश के चौदह राज्यों से बड़ी संख्या में कवि-साहित्यकारों, महिला रचनाकारों ने भाग लिया।

समारोह के दूसरे सत्र में बीइंग वूमेन की राष्ट्रीय अध्यक्ष रंजीता सिंह की ओर से आयोजित 'फलक-20017' के अंतर्गत देश की जानी-मानी शायरा, कवयित्रियों, जागरूक महिलाओं, पत्रकारों को स्वयं सिद्धा सम्मान से समाप्त किया गया। इस दौरान 'वर्ष 2030 तक विश्व में लैंगिक समानता की चुनौतियां' उत्तर प्रदेश हिंदी संस्थान की कार्यक्रम अधिकारी एवं संस्थान की पत्रिका की संपादक डॉ.अमिता दुबे ने प्रकाश डाला। कार्यक्रम में दूरदर्शन की जानी-मानी समाचार वाचिका रही प्रोड्यूसर एवं कवयित्री रमा पांडेय, ममता किरण, शायरा अलीना इतरत, साहित्य सेवी संजना तिवारी, समाजसेवी मृदुला टंडन, प्रभात प्रकाशन की सीओ उर्वशी जान्हवी, नृत्यांगना स्नेहा चक्रधर, शायरा सबा अजीज, रंगकर्मी एवं कवयित्री विभा रानी, असीमा भट्ट, अमर उजाला की रिपोर्टर नलिनी गुसांई, बिहार की समाजसेवी रीता कुमारी को मोमेंटो एवं साल के साथ 'स्वयं सिद्धा शिखर सम्मान' से समादृत किया गया।

इनके अलावा जीवटपूर्ण आत्मसंघर्ष के लिए

'बीइंग वूमेन' की ओर से आयोजित वार्षिकोत्सव '.फलक-2017' में 'स्वयं सिद्धा सम्मान' से समादृत होतीं सबा अजीज, निलिनी गुसांई, रीता कुमारी, साहीन, रति अग्निहोत्री, शकुंतला सरुप्रिया, मीनाक्षी जिजीविषा, लता प्रकाश, ममता किरण, अलीना इतरत, (नीचे दाएं से) ताजवर सुल्ताना, सबीह

'कविकुंभ' प्रकाशनोत्सव मंच पर असगर वजाहत, लीलाधर जगूड़ी, पदमा सचदेव, डॉ. एस फारुख, डॉ. राजशेखर व्यास, अशोक चक्रधर, स्नेहा

उर्वशी जान्हवी अग्रवाल, अलीना इतरत, रमा पांडेय, रंजीता सिंह .फलक, ममता किरण मृदुला टंडन आदि। अन्य चित्रों में ऑल इंडिया बज्मे शायरात सह कवयित्री सम्मेलन में रचना पाठ करतीं (बाएं से) नेहा नाहटा, सलमा हा सुंबुल, वीणा अग्रवाल आदि। दर्शक दीर्घा में उपस्थित डॉ. नुसरत मेंहदी, उर्मिला माधव, मीना खान, डॉ. अमिता दुबे आदि।

चक्रधर, जहीर कुरैशी. डॉ.इच्छाराम द्विवेदी, रमा पांडेय, डॉ. मोहम्मद आजम, असीमा भट्ट को सम्मानित करने की झलक।

दिल्ली की लतिका बत्रा, साहित्य के लिए कमला सिंह जीनत, सुशीला श्योराण, उर्मिला माधव, उत्तर प्रदेश की मधु प्रधान, निवेदिता दिनकर, बिहार की निवेदिता मिश्रा झा, गुजरात की रागिनी त्रिपाठी, राजस्थान की शिवानी शर्मा, महाराष्ट्र की मधु गुप्ता, हरियाणा की वीणा अग्रवाल, छत्तीसगढ़ की लक्ष्मी करियारे को मोमेंटो एवं साल के साथ 'स्वयं सिद्धा सृजन सम्मान' से समादृत किया गया।

कार्यक्रम के अंत में पद्मश्री डॉ. पद्मा सचदेव के मुख्य आतिथ्य, डॉ. नुसरत मेंहदी की अध्यक्षता एवं बागेश्वरी चक्रधर के विशिष्ट आतिथ्य में ऑल इंडिया बज्मे शायरात एवं कवयित्री सम्मेलन हुआ। इसमें ताजवर सुल्ताना (इलाहाबाद), दिल्ली की रमा पांडेय, ममता किरण, अलीना इतरत, डॉ.रमा सिंह, मीना खान, नीलिमा शर्मा, पूनम माटिया, मीनाक्षी जिजीविषा, लता प्रकाश, रति अग्निहोत्री, मंजू शाक्या, हरियाणा की सुशीला श्योराण, शोभना मित्तल, राजस्थान की शकुंतला शरुप्रिया एवं नेहा नाहटा, उत्तर प्रदेश की सलमा शाहीन, सबीहा सुंबुल, कल्पना मनोरमा आदि ने अपनी रचनाओं से श्रोताओं को मंत्रमुग्ध किया।

हिंदीतर प्रदेश में एक अनूठा काव्य-'संकल्प'

आंधियों में भी दिवा का दीप
जलना जिंदगी है,
पत्थरों को तोड़ निर्झर का
निकलना जिंदगी है,
सोचता हूं मैं, किसी छाया तले
विश्राम कर लूं,
किंतु कोई कह रहा, दिन-रात
चलना जिंदगी है.....

डॉ. कृष्ण कुमार एवं डॉ. मधुसूदन साहा

'संकल्प' के स्तंभ

'संकल्प' के सचिव डॉ. मधुसूदन साहा देश के जाने-माने नवगीतकार हैं। उनके आधा दर्जन से अधिक रंचना संग्रह (गीत, नवगीत, मुक्तक, दोहे, गजल, कहानी आदि) प्रकाशित हो चुके हैं। उत्तर प्रदेश हिंदी संस्थान सहित देश की अनेक संस्थाओं से वह सम्मानित हैं। संरक्षक डॉ. श्यामलाल सिंघल के तीन कविता संकलन प्रकाशित हो चुके हैं। उन्हें देश की अनेक हिंदी सेवी संस्थाओं ने सम्मानित किया है। उनकी रचनाओं का मुख्य स्वर व्यंग्य है। वह राउरकेला चेंबर ऑफ कॉमर्स के पूर्व अध्यक्ष भी हैं। अध्यक्ष डॉ. कृष्ण कुमार प्रजापति देश के बहुचर्चित गजलकार हैं। उनके पांच कविता संकलन, दो कहानी संग्रह, एक गजल संग्रह प्रकाशित हो चुके हैं। उनकी रचनाएं वर्तमान साहित्य, दैनिक जागरण, देशबंधु आदि में प्रकाशित होती रहती हैं। अनेक साहित्यिक सम्मानों के बीच वह अंतरराष्ट्रीय हिंदी सम्मेलन इजिप्ट से हरि ठाकुर सम्मान से भी समादृत हो चुके हैं। हरी बांसुरी के स्वर, देश में निकला होगा चांद, हिंदी कहानी के विविध आंदोलन, आज का एकलव्य, उजाले की तलाश, सोच की तीलियां आदि उनकी उल्लेखनीय पुस्तकें हैं।

सृजन-सरोकारों के अंधेरे वक्त में कुछ इसी तरह धुनी और कृतसंकल्प होने का संदेश देती है ओडिशा राज्य के शहर राउरकेला की साहित्यिक संस्था 'संकल्प', जिसने हाल ही में अपनी स्थापना का स्वर्ण जयंती वर्ष मनाया है। संक्षेप में जानें तो देशभर के कवि-साहित्यकारों के लिए 'संकल्प' ने वह कर दिखाया है, जो एक जमाने में साहित्यिक गतिविधियों के केंद्र बनारस में हुआ करता था, जहां का उद्यमी वर्ग दिल खोलकर कला-साहित्य-संस्कृति के लिए बारहो मास तत्पर रहता था।

ओडिशा के हिंदीतर भाषी राज्य होने के बावजूद 'संकल्प' ने पूरे देश की अदबी गंगा-जमुनी साहित्यिक तहजीब को यहां के रचनात्मक सरोकारों से पूरी आत्मीयता के साथ आबद्ध कर लिया है। विस्तार से 'संकल्प' की गतिविधियों की तह में जाना इसलिए भी आवश्यक लगता है कि इससे प्रेरणा लेकर ऐसी गैरसरकारी कोशिशें देश के अन्य राज्यों में भी साहित्य की संवाहक बनें। बेहतर तो होगा कि ज्ञात-अज्ञात ऐसी संस्थाओं का एक साझा केंद्रीय मंच बने, जिसके नेतृत्व में नई पीढ़ी के रचनाकारों को किसी सरकारी खैरातों का मोहताज न होना पड़े।

'संकल्प सौरभ' की एक टिप्पणी में यहां के जाने-माने नवगीतकार डॉ.मधुसूदन साहा लिखते भी हैं - 'बड़े स्वप्न को साकार करने के लिए बड़ी साधना की जरूरत होती है। किसी भी स्वयंसेवी हिंदी संस्था का हिंदीतर प्रदेश में स्वर्ण जयंती वर्ष मनाना गौरव की बात है। जब हाथ से हाथ और दिल से दिल मिलते हैं, बड़ी से बड़ी कठिनाई खुद-ब-खुद आसान हो जाती है।'

'संकल्प' की नींव के सबसे अनमोल पत्थर हैं प्रसिद्ध गजलकार एवं संस्था के अध्यक्ष डॉ. कृष्ण कुमार प्रजापति। एक अभिन्न परिवार की तरह संस्था की नींव मजबूत करने में संरक्षक कवि डॉ. श्यामलाल सिंघल, श्याम सुंदर सोमानी, डॉ. संतोष कुमार श्रीवास्तव की आधार-भूमिका रही है। उल्लेखनीय होगा कि पूरे संकल्प-परिवार के प्राथमिक सरोकार साहित्यिक हैं। परिवार के सभी सदस्यों में अदभुत भाईचारा है।

'संकल्प' की स्थापना पचास साल पहले राउरकेला के कुछ युवा उत्साही हिंदी सेवियों ने की थी। उनमें से ज्यादातर बाद में शहर छोड़ गए। कोई विदेश में बस गया, कोई कहीं और। कई एक इस दुनिया में नहीं रहे, लेकिन संकल्प-यात्रा थमी नहीं। संकल्प से पहले नगर में मानस परिषद और हिंदी परिषद, दो संस्थाएं सक्रिय थीं। उस दौरान 'संकल्प' नामक पत्रिका प्रकाशित होने लगी, जो आर्थिक संकट से बीच रास्ते थम गई। फिर संस्थान ने रचनाओं के संकलन-प्रकाशन का काम हाथ में लिया। एक संकलन के लोकार्पण में डॉ. नामवर सिंह शामिल हुए। उनसे प्रोत्साहन मिला। आगे बढ़ने की संभावना जगी। इसी क्रम में संस्था से जुड़े सदस्यों के परिजनों को पुरस्कारी आशु कविता लेखन के बहाने एक-दूसरे के निकट लाने का उपक्रम हुआ। साझा परिवार ने बड़ा आकार लिया। उड़िया और अन्य भाषाओं के रचनाकार, साहित्य सुधी संस्था से जुड़ते चले गए।

संस्था के कार्यक्रमों में कैलाश गौतम, गोपालदास नीरज, जानकी बल्लभ शास्त्री, डॉ. शांति सुमन, उद्भ्रांत जैसे कवि-कवयित्रियों की उपस्थिति ने उत्साह जगाया।

'संकल्प' के अध्यक्ष डॉ.अर्जुन शतपथी के देहावसान के बाद जब डॉ. कृष्ण कुमार प्रजापति ने यह पद संभाला, एक-एक कर कई नये आयाम जुड़ने। संप्रति राउरकेला के प्रायः सभी साहित्य प्रेमी 'संकल्प' परिवार में शामिल हैं। आज नगर के होटल शुभम में संकल्प का अपना भव्य सभागार है, डॉ.मधुसूदन साहा के नाम पर बड़ी सी लायब्रेरी और कांफ्रेंस रूम है। देश के कोने-कोने से हिंदी प्रेमी और कवि-साहित्यकार यहां पहुंचते हैं। अब आइए, 'संकल्प' के साहित्य-साधकों के सृजन-संक्षेप से परिचित होते हैं।

असीमा भट्ट

तुमसे बहुत प्यार करती हूँ माँ

जीने दो न माँ, मुझे अपनी मर्जी से,
क्यों देती हो खानदान का हवाला बार-बार।
तुम्हें क्यों लगता है कि मैं कुछ नहीं जानती,
मैंने सुने हैं तुम्हारी खामोशी के एक-एक शब्द,
रातों में जागकर, सबसे छिपकर तुम्हारा रोना सुना है, मैंने नींद में
तुम्हारे सुनसान चेहरे पर अनगिनत भाव देखे हैं।
तुमने अपने मन में जो दर्द की गठरी बाँध रखी है
जिसकी बोझ से दुखता है तुम्हारा सीना
सब जानती हूँ, तुम्हारे छिपे रहस्य, एकान्त के, अपमान के, सब जानती हूँ।
फिर तू कैसे कहती है - ह्लतू कुछ नहीं जानती है।ह्व
तो माँ शायद तुम भूल जाती हो कि तुम माँ हो!
तुमसे माँ-बेटी का रिश्ता है जो गर्भ का रिश्ता है,
तुम्हारे अंदर नौ महीने रही हूँ, ली हैं तुम्हारे भीतर साँसें,
तुम्हारी एक-एक धड़कन को इतने करीब से सुना है,
जब तुम्हारे उतने करीब कोई नहीं था।
मेरे पिता भी नहीं, सब जानती हूँ माँ, कभी कहा नहीं।
तुम्हें यह बता कर रुलाना नहीं चाहती कि तुम्हारे बारे मैं सब जानती हूँ।
जैसे कि तुम मेरे बारे में सब जानती हो,
हम एक-दूसरे के राजदार हैं माँ।
तुम्हें जो लगता है अल्हड़पन की हद तक जाकर मेरा जीना,
जो कुछ-कुछ तुम्हें मेरी बेशर्मी लगती है,
नहीं माँ! तू तो ऐसा मत समझ।
तुम्हारी एक-एक चुप्पी का मुंहतोड़ जवाब है ये,
काश तू समझ पाती,
तुम्हारे सलीब ही हैं मेरे कंधे पर, जो अब मैं ढो रही हूँ,
लड़की होना और औरत होना कोई गुनाह नहीं है
जो हमें बार-बार याद दिलाया जाता है
आतंकवादियों कि तरह कि ह्लतुम लड़की होह्व, ह्लतुम औरत हो।ह्व
हां, हूँ लड़की.....औरत....तो क्या?
तो क्या हमें जीने का हक नहीं?
खानदान और सांस्कारों के कोड़े
बार-बार क्यूँ बरसाये जाते हैं हमारे ऊपर,
नश्तर की तरह खुदे हैं तुम्हारे एक-एक जख्म मेरे भीतर।
इस सब का बदला एक ही है सबकी तरफ से
समस्त बेटियों की तरफ से, समस्त माँओं के लिए
खुले चैराहे पर सीना खोलकर
खुलकर साँस लेना चाहती हूँ, जी भरकर
सड़े-गले रिवाजों की कब्र पर खड़ी होकर,
चिल्लाना चाहती हूँ जोर-जोर से
और कहना चाहती हूँ, तुमसे बहुत प्यार करती हूँ माँ।

नीलू 'नीलपरी'

नारी शक्ति

सतयुग बीता, कलियुग बीत चला,
न पुरुषोत्तम राम, न आज का श्याम स्त्री व्यथा को समझ सका,
स्त्री अहिल्या बनी, स्त्री मीरा, राधा बनी
बनी वही जनक-सुता, रानी लक्ष्मी, मदर टेरेसा,
सावित्री फुले, शकुंतला देवी,
दीपा मल्लिक का जौहर दिखा
नित नए आयाम बुनती रही, अफसोस, हे नारी जाति!
पुरुष राम, रावण, माधव बन
हर युग में स्त्री को ही छलता रहा।

मानवीकरण, दैवीकरण

देखिये, ये कुछ सभ्यतागत बातें हैं
प्रकृति के मानवीकरण की,
सम्भव है अति मानवीकरण की, कुछ दैवीकरण की,
हमारे यहाँ पेड़ मनुष्य नहीं, उनकी अपनी प्रकृतियाँ हैं बस,
और प्रतीकों में वो पूजे जाते हैं, जैसे वट सावित्री पूजा में
बड़ या बड़गद के चारो ओर बंधा धागा
बना देता है उस पेड़ को कुछ दैवी,
और फिर अलग-अलग दैवी प्रकृतियाँ बनतीं हैं पेड़ों की,
पूजा तो पीपल भी जाता है,
पीपल सबसे ज्यादा शुद्धिकारक है।
और भी पेड़ बनाते हैं हमारी हवा को ज्यादा सांस लेने लायक,
हमारी हर सांस को ज्यादा अर्थवान,
और समुद्र तो पुरुष है
और कैसे बूझें हम उसका प्रचंड वेग,
उदार उदधि मित्र हमारा,
पर डर है, वह जल्दी ही खो देगा अपना विराट रूप,
और डर है कि पेड़ अब बचेंगे केवल वही
जो हैं धागों से लिपटे हुए सुहाग चिन्हों के रूप में केवल,

पंखुरी सिन्हा

बचेंगे पेड़, और नदियाँ, जो जरूर स्त्रीवाचक हैं,
और जिनके कल्पित हैं कई अवतार से रूप,
किस हद तक बनेंगी औरतों को ढालने का साँचा होते-होते केवल,
मिट्टी का जमाव यानी औरतें बनेंगी या नहीं
नदियों सी शांत, सबकुछ समेटती बहने वाली,
क्या नहीं सहने वालीं रक्त की नदियां
बहने को तैयार हैं इस पर।

न रोटी, गमछा-लंगोटी, कोई किला कोठी

जनता! जनता!
जनता का वोट, वोट की सत्ता,
सत्ता के मंत्री, बाबू और संतरी,
ऑफिस और कैंप, मॉडल और रैंप,
घपले घोटाले, गुंडे जो पाले,
उनका भी खर्चा, टीवी पर चर्चा,
मन की सब बातें, घातें-प्रतिघातें,
बंगला और गाड़ी, मंहगी सी साड़ी,
धरना प्रदर्शन, हड़ताल, अनशन,
पुलिस दरोगा, कसरत और योगा,
दुनिया के देशों की ढेरों यात्राएं,
पौधा लगे न लगे, फल हम ही खाएं।
इन सब सुविधाओं की, स्त्रोत वही जनता,
जिस पर न रोटी, गमछा-लंगोटी, कोई किला कोठी,
कुछ भी नहीं है, कितने बरस बीत गए,
जनता वहीं है, वही घीसू-माधव हैं, वही साहूकार हैं,
अंग्रेज चले गए, वही सरकार है,
वही नियम कायदे, घिसुआ को लातें
और साहब के फायदे
कोरट-कचहरी भी, बांदी है सत्ता की,
जो ये न हो तो काम नहीं बनता।
जनता री जनता, कब तक सहेगी, ऐसे ही रहेगी,
झूठे अनूठे बेईमान वादों के,
गंदले से दरिया में कब तक बहेगी,
हाथ उठा, तान जरा कसी हुई मुट्ठियाँ,
राग नया छेड़, भगा अलसाई सुस्तियाँ
खेत खान तेरे हैं, खलिहान तेरे हैं
बजने दे नक्कारा, उठने दे अंगड़ाई।

राम जनम सिंह

कालपात्र

दुष्कर्मियों के अट्टहास,
औरतों और बच्चियों के आर्तनाद,
बेशर्म राजनीति के बयान,
तमाशबीन और कायर व्यवस्था की चुप्पी,
सब दफन हो रहा है उस मिट्टी में,
जहाँ-जहाँ बहा है किसी प्रताड़िता का लहू,
जहां-जहां दागा गया है गर्म सलाखों से,
किसी मासूम कली का बचपन,
जहाँ रौंदा गया है शैशव,
सदियों बाद इतिहास की खोज में
जब खोदी जाएगी ये मिट्टी,
कालपात्रों की तरह निकलेंगी वहां से ये गूंगी चीखें
ये बेशर्म बयान, ये कायर चुप्पियाँ, ये क्रूर अट्टहास
इस युग के माथे पर लगेगा शायद
लेबल एक बलात्कारी युग का
कौन जाने विज्ञान के वर्चस्व की बजाय
न्याय के बौनेपन के लिए जाना जाये ये युग
तकनीक की चमक दमक से नहीं
हवस के अंधेरों से होगी
समय के इस चेहरे की शिनाख्त।
क्या हमारे वंशज कहेंगे फख्र से कि देखो
बर्बरता में इतना समृद्ध था हमारा समाज।

शोभना श्याम

सुशीला शिवराण

रेजा-रेजा अस्मत

मुट्ठी भर मर्द
ढाते रहे कहर
तोड़ते रहे जुल्म की हदें
सिहरती-बिलखती रही
बेबस-अपंग आबरू
चीखती रही बेहिसाब।
वहाँ जिस्म था, हवस थी
न कोई भाई था, न ही बाप
पत्थरों का शहर था
न दिल थे, न रूहें
इर्द-गिर्द घूम रहे थे
कुछ मुर्दा से साये
मानो ढो रहे हों
जिंदा होने का शाप।
नाचती रही हैवानियत
नोचती रही रेजा-रेजा अस्मत
काँप उठा था आकाश
कोई तो आता काश !
बढ़ती रही दरिंदगी
बढ़ाती रही हौसला,
हजारों-हजार नामर्द खामोशियाँ।
रोती रही कलियाँ
सिसकते रहे फूल
बिसूरते रहे बेबस खार
रात भी रोई जार-जार
चाँद-तारे शर्मसार थे
मानो वे ही गुनहगार थे
छिप गए थे सारे के सारे
मानो नीम अँधेरे से
ढक देना चाहते हों
रेजा-रेजा नुचती
बहन-बेटी की अस्मत।
जिस्म के साथ-साथ
लुटी-लुटी सी पड़ी थी
लहूलुहान सी इक रूह
लुट गया था विश्वास
कि जिसका कोई नहीं
खुदा है उसके साथ
सवेरे आफताब ने देखा।
जी भर रोई थी ओस
मानो खो बैठी थी होश
नहीं भरी परिंदों ने उड़ान
जमीं हो चुकी थी मसान
वहाँ झाड़ियों के पास
पड़ी है निर्वसन नुची हुई लाश
सूँघ के गर्म गोश्त-खून की गंध
आ पहुँचे कुछ आवारा कुत्ते
टूट पड़े मिटाने को भूख
या मिटा रहे हैं
इंसानियत को शर्मसार करती
हवस-भूख की निशानियाँ!

कृष्णकांत दुबे

तारों के साथ मेरी माँ आती होगी

मुझे देखने दो आसमां,
तारों के साथ मेरी माँ आती होगी।
मुझे लिखने दो सिसकियां,
चाँदनी से लिपटी मेरी माँ आती होगी।
मुझे कोई आवाज न देना,
जब करे माँ हमसे बातें अपनी थकान की,
मुझे जी भरके लिपट लेने देना,
कोई मत मुझे बुलाना जब माँ बिखेरे छटा मुस्कान की।
मुझे देखने देना सफर तारों का
उन्हीं तारों के साथ मेरी माँ आती होगी।
दर्द की तमाम दास्तां सुनाएंगे,
जब से बिछुड़े हैं हम, सब जख्म दिखाएंगे,
मुझे देखने दो आसमां,
तारों के साथ मेरी माँ आती होगी।

भोर की परतें

खुलने लगी थीं अधेरे की परतें,
सूरज था अदृश्य आसमान में,
खींच रहा था जाल अंधेरे का,
मंदिरों के घंटे बज रहे थे,
मस्जिदों से अजान की आवाज सुनाई पड़ी थी
नेपथ्य से पर्दा उठा था, अभिनय शुरू हुआ
जीने के लिए दिन से शाम तक
कम्प्यूटर के विंडो की तरह,
खुल रहा था सूरज का ठिकाना,
भागे जा रहे थे सड़कों पर
अवैध धंधों के कारोबारी,
रिक्शा, सब्जी बेचने वाला, किसान,
अखबार बेचने वाला हॉकर
निकल रहे थे अपने काम पर,
चाय की दुकानों पर अखबारों में छपी
खबरों पर बहस सुबह-सुबह
आतंकियों के मरने, बैंक की लूट, साइबर क्राइम,
फाइनल मैच
बालिकाएं मां के साथ घर बुहार रही थीं,
भोर की परतें खुल रही थीं।

नाक बचाने की चिंता

नाक की साख बची रहे,
इसे बचाने की चिंता है सबको,
बजते हैं केवल गाल, नाक कटे नहीं,
चाहें तो नाक खरीद लें, प्लास्टिक की,
चुनाव जीत लें,
खुद तो बचा ली, अब चिंता है अपने आदमी की
नाक को कटने से बचाने की,
वे चाहें तो अर्जुन को खरीद लें,
कर्ण को अपने साथ कर लें,
कृष्ण की नाक ले लें
राम की नाक लगा लें
महापुरूषों की नाक में दिखाई पड़ें
महाभारत का युद्ध नाक बचाने के लिए हुआ,
सीता को वापस कर के नाक बचा ली गई,
युद्ध से नाक बचती है,
प्रचार हो रहा टीवी, अखबारों में,
उसने देखा कि नाक ही चली गई है,
जो है बिना काम की
नाक रहने पर बर्दाश्त
नहीं होता अन्याय और कचरे की दुर्गंध
इतने काले कारनामे,
किसी भी सूरत में नाक बचाने की होड़।

राजेन्द्र राज

किटी पार्टी हो गया कविता का संसार

संजय चतुर्वेदी

कविता में तिकड़म घुसी जीवन कहां समाय ।
सखियां बैठीं परमपद सतगुरु दिया भगाय ।
घन घमंड के झाग में लंपट भये हसीन ।
खुसुर पुसुर करते रहे बिद्या बुद्धि प्रबीन ।
सतगुरु ढूंढ़े ना मिलै सखियां मिलें हजार ।
किटी पार्टी हो गया कविता का संसार ।
रूपवाद जनवाद की एक नई पहचान ।
सखी सखी से मिल गई हुआ खेल आसान ।
ऊंची कविता आधुनिक पकड़ सकै ना कोय ।
औरन बेमतलब करै खुद बेमतलब होय ।
कवियों के लेहड़े चले लिए हाथ में म्यान ।
इत फेंकी तलवार उत मिलन लगे सम्मान ।
कविता आखर खात है ताकी टेढ़ी चाल ।
जे नर कविता खाय गए तिनको कौन हवाल ।
जनता दई निकाल सो अब मनमर्जी होय ।
मंद मंद मुस्काय कवि कविता दीन्ही रोंय ।
खुसुर पुसुर खडयंत्र में फैले सकल जुगाड़ ।
निकल रही यश वासना तासें बंद किवाड़ ।
सरबत सखी जमावड़ा गजब गुनगुनी धूप ।
कल्चर का होता भया सरबत सखी सरूप ।
सरबत सखीयन देख कै लम्पट रहे दहाड़ ।
करै हरामी भांगड़ा सतगुरु खाय पछाड़ ।
सरबत सखी निजाम हित बोला चतुर सुजान ।
हिंदी कविता की बनी अब बिसिस्ट पहचान ।
सखी पंथ निर्गुन सगुन दुर्गुन कहा न जाय ।
सखियन देखन मैं चली मैं भी गयी सखियाय ।
कल्चर की खुजली बढ़ी जग में फैली खाज ।
जिया खुजावन चाहता सतगुर रखियो लाज ।
कवियों ने धोखे किये कविता में क्या खोट ।
कवि असत्य के साथ है ले विचार की ओट ।

मंच के प्रपंच में कविता

भले ही वाणिज्य के सामने संवेदना की क्या बिसात, फिर भी, हमारे समय का सबसे खुरदरा सवाल है ये, कि शब्दों की दुनिया कैसे खूबसूरत बनी रहे! एक ओर बाजारवादी झूमा-झटकी में कला-गला और रूप के नखरे, माल-मत्ते के मंचीय प्रपंच, अजब-गजब नाम रखने का चलन, ऊटपटांग फुलझड़ियां, दूसरे घाट पर जटिलतर और अबूझ होने का छंद-मुक्त स्वातंत्र्य। बहसों के भंवर में तितर-बितर होकर रह गए हैं सहज शब्द-प्रवाह। हमारे समय की कविता-अकविता (?) पर जारी 'कविकुंभ' के शब्द-स्वर का एक और श्रृंखला-क्रम। इस बार बहस में शामिल हैं - कवि-लेखक प्रफुल्ल कोलख्यान, भारतेंदु मिश्र, यश मालवीय, ज्ञानचंद मर्मज्ञ, सेवाराम त्रिपाठी, लतिका बत्रा, हरिशंकर व्यास, शैलेंद्र शर्मा, हरी सिंह, अचल फिरोजाबादी, अमित शर्मा, विवेक प्रजापति, सीमा सिंह, तारा गुप्ता और अवधेश चतुर्वेदी के शब्द।

कभी अपने लिए भी कविता लिखा करो कवि!

प्रफुल्ल कोलख्यान

आयास के हर तरंग और रंग में मनुष्य खुद पहले होता है, उसके परिजन होते हैं। बाकी लोग तो बाद में आते हैं। पैसा कमाने, घर मकान बनाने के लिए किये गये प्रयास का फल तो अपने और अपने परिजन तक पहुँचाने के लिए कोई परेशान रहे और कविता लिखने के लिए किये प्रयास के सुफल को पहले किसी अन्य तक पहुँचाने के लिए बेचैन। अपने लिए भी कभी कविता लिखा करो कवि! कविता से कोई सवाल करने के पहले खुद से सवाल करने का बुनियादी बोध और साहस तो होना ही चाहिए। मोहासिक्त होना और बात है; सवाल तो यह है कि अपनी कविता में हमारे खुद के लिए जीवन-शक्ति कितनी है और यह भी कि कविता हमारे खुद के जीवन की प्रतिज्ञा चाहे जितनी बड़ी हो, प्रेरणा कितनी बड़ी है !

कविता कोई बौद्धिक कार्रवाई तो है नहीं सो लिखी जाती है अचेत मन से। कविता पढ़ना लेकिन बौद्धिक कार्रवाई है सो, पढ़ी जाती है सचेत मन से। कोई भी कविता जब हमारे अनुभव का हिस्सा बनती है तो उसकी अनुभूतियाँ हमारे मन को नये सिरे से सरियाती और सँवारती है, रिएलाइन करने की कोशिश करती है। अगर अपने अंदर के कोलाहल को स्थगित कर हम कविताओं पर कान धरने में कामयाब हो सकें। आज लिखी जा रही अधिकतर कविताओं के संदर्भ में यह कहना प्रयोजनीय है, कि भाषा एक सार्वजनिक, ऐतिहासिक और सांस्कृतिक औजार है। इस औजार को साधना पड़ता है। फिर कहें, कविता लिख ली जाती है अचेतन मन से, लेकिन पढ़ी जाती है सचेत हो कर। समाज, भाषा और कविता के अंतस्संबंध पर गौर करें तो, भाषा कविता को काबू करे, यह अच्छी स्थिति नहीं है, बल्कि चाहिए यह कि कविता भाषा को काबू करे।

शायद सबसे अधिक संख्या में कविता लिखी जाती है, और सब से कम संख्या में पढ़ी जाती है! तो कविता के साथ क्या हुआ! कविता के साथ क्या हुआ! जी हिंदी कविता के साथ! अन्य भाषा की कविताओं के साथ भी ऐसा ही कुछ हुआ होगा।

हिंदी में हिंदी कविता लिखना मुश्किल होता गया। हिंदी में हिंदी कविता लिखना मुश्किल होता गया! क्या मतलब? जब हिंदी में मैथिली, भोजपुरी, ब्रज, अवधी, बुंदेली, छत्तीसगढ़ी, उर्दू आदि कविता का लिखा जाना मुश्किल होता गया तो हिंदी में हिंदी कविता का लिखा जाना मुश्किल हो गया। नागार्जुन हिंदी में मैथिली कविता लिखते थे, इसलिए जनकवि हो सके। बिना जनपद के जनकवि नहीं हुआ जाता है। धीरे-धीरे कवियों में यह कहने का साहस खोता गया कि 'उस जनपद का कवि' हूँ।

जब साहस ही खो गया तो शब्द को मरना ही था, सो मर गया। क्योंकि सहमत न होने का सवाल ही नहीं उठता केदारनाथ सिंह की बात से कि 'शब्द मरते हैं, साहस की कमी से'। भारतेंदु हरिश्चंद्र और अयोध्या प्रसाद खत्री के पत्राचार की याद है न! तो फिर हिंदी में मैथिली आदि की कविता का लिखना क्यों बंद हो गया? इसलिए कि मैथिली आदि में ही मैथिली आदि की कविता लिखना लगभग असंभव हो गया! इस हादसा से निबटने के लिए हिंदी आदि के कवियों ने भारतीय कविता की बात शुरू कर दी। स्थानिकता, कह लें आंचलिकता, को दबाने में राष्ट्रीयता से बड़ा चिक (बाँस की कमानियों से बना पर्दा) और क्या हो सकता था।

तो हिंदी कवि हिंदी कविता की जगह भारतीय कविता की और बढ़ गये। इधर स्थानीय कवि भी लपककर भारतीय कविता बनाने की दौड़ में शामिल हो गये तो अगला विश्व-कविता लिखने लगा। जो इशारा न समझे उसे आगे कुछ भी कहना बेकार है। इसलिए, अब आगे कहना जरूरी नहीं कि हिंदी कविता के साथ क्या हुआ।

आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने कहा था, प्रच्छन्नता का उद्घाटन कवि-कर्म का मुख्य अंग है। प्रच्छन्नता को उद्घाटित करने की शक्ति के कम होते जाने या प्रच्छन्नता के खेल में ही मजा लूटने के मनोभाव के कारण सभ्यता की गतिशीलता के प्रच्छन्न प्रसंग को समझने में कवियों की दिलचस्पी घटती गई है। समाज की दरिद्रता का आयतन बढ़ रहा है, कविता का अंतःकरण सिकुड़ रहा है। कविता का अंतःकरण उदास और अंतर्लोक ऊसर बना हुआ है। कविता की प्रायोजित प्रशंसा के जिस शोर को स्वर मानकर कविगण संतुष्ट और आत्मसमृद्ध हो रहे हैं वह दूसरे के लिए स्वर नहीं बन पाता है; शोर ही बना रह जाता है। समकालीन समय में दुर्घटनाग्रस्त संवेदना की भयानक परिणति स्वर का शोर में बदलते जाना है। हमारी काव्य परंपरा को समृद्ध बनानेवाले काव्य-स्वर भी शोर में बदले जा रहे हैं। कबीर, तुलसी ही नहीं जायसी के स्वर भी शोर के हवाले हैं। जिस बाजार में कबीर लुकाठी लेकर खड़े थे उस बाजार में आज संत और सूफी के वारिस इत-उत धावत नजर आ रहे हैं! अशांत काव्य-चित्त का यह इत-उत धावन जितनी तेजी से बढ़ रहा है कविता का आशय और आवेदन उतनी ही तेजी से अश्रव्य होता जा रहा है। सत्य को प्रिय बनाने के कौशल का अभाव प्रिय को ही सत्य मानने का आत्मछल रचता है।

अपने इतिहास के किसी दौर में हिंदी कविता इतनी अधिक अग्रा' और इतनी अधिक अनालोच्य कभी नहीं रही है। इसके अनालोच्य होते जाने का एक बड़ा कारण इसकी अनायासता में है। जीवन में कुछ भी अनायास नहीं होता है। कविता भाषा की अनायास प्रक्रिया नहीं है। कविता में आयास और अनायास के मिश्रण की यह जादुई प्रक्रिया कुछ अधिक ही सूक्ष्म होती है। हिंदी कविता में सायास-अनायास के द्वंद्व-बिंदु का निभाव देखना दिलचस्प है! मनुष्य की मूल-वृत्तियाँ वास्तविक रूप से व्याघाती नहीं होती हैं। कविता सत्ता और सच दोनों के पार की स्थिति जाकर अपनी अस्मिता हासिल करती है। सत्ता और सच की जुगलबंदी में साहित्य जब सच का नत्थीकरण सत्ता से कबूल करने लगता है तब शब्द कवि के ब्रह्मांड की गुप्त आकाश गंगा में आने से कतराने लगते हैं। अपनी अर्थ-ध्वनियों को खो चुकने के बाद विचार के खो जाने, नृत्य की मुद्रा या मुद्रा के नृत्य में और कवि के अदृश्य परछाई में बदलते जाने के अलावा शब्द के सामने

विकल्प ही क्या बचता है? यह बचा हुआ विकल्प भी क्या विकल्प है?

कवियों की नाराजगी का खतरा मोल लेते हुए भी कहना जरूरी है कि समकालीन हिंदी कविता में आत्म-प्रेरणा और आत्म-प्रतिज्ञा का अपठ्य हो जाना बहुत ही दुखद है, खासकर तब जब हम यह देखते हैं कि कुछ समय पहले तक भी कविता में कुछ प्रेरणाएँ और प्रतिज्ञाएँ बची हुई थीं। भाव, विचार, संवेग सभी तो हैं फिर वह कौन-सी बात है कि कविता में प्राणत्व का अभाव बना ही रह जाता है। प्रयोजनहीनता! काव्य प्रयोजन का खो जाना! काव्येतर प्रयोजन से उसका विस्थापित हो जाना! कविता में प्राणत्व के अभाव का बड़ा कारण क्या है! बहुत बोलने और कुछ न कहने की भाषिक प्रविधि के पार जाकर ही कोई जवाब मिल सकता है, शायद। सवाल यह कि स्वर के भी शोर में बदल देनेवाले समय में इस भाषिक प्रविधि के पार जाने का जोखिम अकेला कवि कैसे उठाये!

शोर की सामूहिकता और स्वर की निरवता में यह अकेलापन है कि टूटता ही नहीं -- कविता क्या संभव है! हिंदी कविता के सामने कई तरह के सवाल हैं, आरोप भी। गंभीर होने के बावजूद अंतरबद्धताओं, अंतर्साक्ष्यों और उपयुक्त विश्लेषणों के अभाव में ये सवाल और आरोप तदर्थ बनकर रह जाते हैं। सवालों का तदर्थ आचरण जीवन को भी क्षतिग्रस्त करता है और साहित्य को भी। कहना न होगा कि सवालों का तदर्थ आचरण तदर्थ विचार या विचारहीनता की ओर हाँक ले जाता है। एक दूसरा पक्ष भी है, और वह प्रशंसाओं का है।

हिंदी कविता प्रशंसाओं के बोझ से भी कम आक्रांत नहीं है। वर्द्धित प्रशंसा कई बार जरूरी सवालों से मुँह चुराकर निकल जाने का राजपथ बनाती हैं। इसमें तत्काल कोई खतरा नहीं होता है। तात्कलिक रूप से खतरा भले न हो लेकिन आगे चलकर इसकी भारी कीमत चुकानी ही पड़ती है!

'आदमी' अपना काम खुद करता है। अपना काम खुद करने से परहेज 'आदमी' होने की संभावनाओं में छीजन पैदा करता है। जीवन में कौंध भले ही कई बार अनायास प्रकट होती है लेकिन हमारा अनुभव बताता है कि जीवन में जो भी महत्त्वपूर्ण घटता है सायास घटता है। याद करें गालिब को, आदमी का 'इन्साँ' होना आसान नहीं इसके लिए संघर्ष करना पड़ता है -- 'बसकि दुश्वार है, हर काम का आसाँ होना / आदमी को भी मुय्यसर नहीं इन्साँ कविता के अंतःकरण को सामाजिक बदलाव के उपकरण में बदलना थोड़ा मुश्किल तो होता ही है। इस काम के लिए वर्गीय चेतना को जनचेतना, जनचेतना को सामाजिक चेतना और फिर सामाजिक चेतना को राजनीतिक चेतना में बदलने के अंतर्बिद्ध एवं चाक्रिक सातत्य से गुजरना पड़ता है। हिंदी कविता का एक पक्ष -- जो कि अब धीरे-धीरे कमजोर भी होता जा रहा है -- जनचेतना एवं सामाजिक चेतना की अवहेलना करते हुए वर्गचेतना को सीधे राजनीतिक चेतना में बदलने की हड़बड़ी में रहा है। दूसरा पक्ष - साहित्य की स्वायत्तता के नाम पर -- इन सबकी अवहेलना करते हुए व्यक्ति-चेतना की धुन में रहा है। सामाजिक के उपभोक्ता में बदलते जाने के दौर में यह हड़बड़ी और धुन अपने ऐसे उठान पर है, जहाँ कविता का 'अपना मोर्चा' ढह गया लगता है।

कविता के बारे में सोचते हुए छंदों की ओर भी ध्यान जाना स्वाभाविक है। कविता और कहानी का अंतर स्पष्ट करते हुए आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने कहा था कि ''कविता सुननेवाला किसी भाव में मग्न रहता है और कभी-कभी बार-बार एक ही पद्य सुनना चाहता है। पर कहानी सुननेवाला आगे की घटना के लिए आकुल रहता है। कविता सुननेवाला कहता है ''जरा फिर तो कहिये।'' कहानी सुननेवाला कहता है, ''हाँ तो फिर क्या हुआ?'' इस बात को यों भी समझा जा सकता है कि कविता जाने हुए को नये सिरे से जानने, भोगे हुए को नये सिरे से भोगने -- अर्थात, कविता जीवन में दोहरावों के लिए, 'फिर-फिर' के लिए, अद्भुत अवसर सिरजती है। इस तरह कविता 'भोगो और भूलो' के बदले 'भोगो और बचाओ' की संभावनाओं की मनोभूमि पर जीवन की गतिमयता और गेयात्मकता को बचाने की मनोरम अल्पना रचती है। इस काम में छंद बड़ा सहायक होता है। इस दृष्टि से छंद 'काव्यत्व' के लिए उपयोगी होता है। यहाँ एक खतरा भी है। इस खतरा पर ध्यान देना जरूरी है।

असल में छंद काव्याभास तैयार करता है। छंदबद्धता में काव्याभास सहज ही उपलब्ध हुआ करता है। छंद के आधार पर काव्याभास को काव्य मान लिये जाने का खतरा होता है। यह समझना भारी भूल होगी छंद में कविता होती है। असल बात यह है कि कविता में छंद निहित होता है। कविता होना जरूरी है, चाहे वह छंदबद्ध हो या छंदमुक्त।

मंच पर कविता नहीं होती। कविता की प्रस्तुति होती है। प्रस्तुति को सुंदर बनाने के लिए कई तरह के सम्मिलित प्रयास की जरूरत होती है।

यहाँ जिस तरह की कविता पर चर्चा की जा रही है, वह अपनी प्रस्तुति के अभाव में कविता हो जाने से वंचित रह जानेवाली कविता नहीं है।

कविता की प्रस्तुति के लिए प्रयास करना भिन्न बात है और प्रस्तुति के लिए कविता लिखने का प्रयास करना भिन्न बात। सच बात तो यह है कि कविता अपने को कई भाषिक रूपों में प्रकट करती है। कविता अपने को कविता के रूप और रूपों में कभी-कभी प्रट करती है। कविता से इतर भाषिक रूपों में प्रकट होकर कविता वाणिज्य का हिस्सा बनती है, कविता के रूप में प्रटक होकर कविता संवेदना का हिस्सा बनती है।

वाणिज्य के सामने संवेदना की क्या बिसात! कविता अगर अपने कवि की प्रेरणा, प्रतिज्ञा और संवेदना का हिस्सा बने, यह अधिक जरूरी है।

आयास के हर तरंग और रंग में मनुष्य खुद पहले होता है, उसके परिजन होते हैं। बाकी लोग तो बाद में आते हैं। पैसा कमाने, घर मकान बनाने के लिए किये गये प्रयास का फल तो अपने और अपने परिजन तक पहुँचाने के लिए कोई परेशान रहे और कविता लिखने के लिए किये प्रयास के सुफल को पहले किसी अन्य तक पहुँचाने के लिए बेचैन। अपने लिए भी कभी कविता लिखा करो कवि! कविता से कोई सवाल करने के पहले खुद से सवाल करने का बुनियादी बोध और साहस तो होना ही चाहिए। मोहासिक्त होना और बात है; सवाल तो यह है कि अपनी कविता में हमारे खुद के लिए जीवन-शक्ति कितनी है और यह भी कि कविता हमारे खुद के जीवन की प्रतिज्ञा चाहे जितनी बड़ी हो, प्रेरणा कितनी बड़ी है !

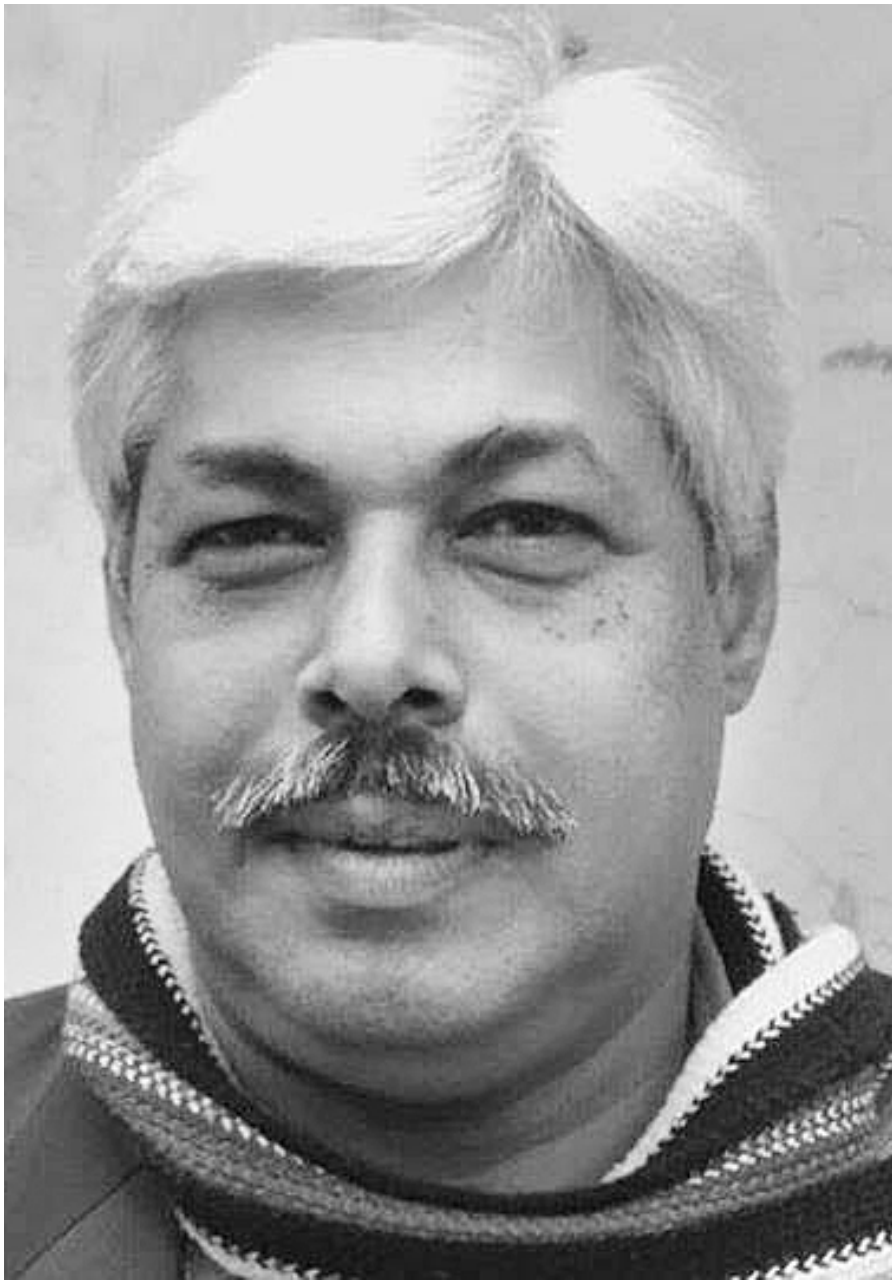

हम न होंगे, गीत होंगे

भारतेंदु मिश्र

सभी विधाओं के कवि स्वयं को सर्वश्रेष्ठ मानते हैं। गीतवाले, गजलवाले, मुक्तछंद वाले, हाइकूवाले, दोहेवाले, छंदहीनतावाले, सब कविता के शिल्प को लेकर एकत्र नहीं होते। विधा के आधार पर एकत्र हो भी जाए तो अपनी खेमेबाजी के कारण विचारधारा के आधार पर एकत्र नहीं होते-वामपंथ, दक्षिणपंथ, जनवाद, प्रगतिशील, समाजवादी, सांस्कृतिक राष्ट्रवादी जैसे अनेक खेमे हमारे समाज में बन चुके हैं। सबको एक साथ जोड़ना आसान नहीं है लेकिन एक न एक दिन तो कविता को और कवियों को समावेशी सामाजिक संरचना के लिए एकत्र होना ही होगा।

अपने कवि समाज में से कम विख्यात लोगों को हमे खोजने की आवश्यकता है, जो बिना खोजे मिल जाते हैं, वे अक्सर कवि नहीं होते। जो बार-बार हमारे सामने स्वयं प्रस्तुत हो जाती हैं, वे कविताएं भी असरदार नहीं होतीं। बस हर समय में अनेक ऐसे जुगाड़ू कवि होते हैं, जो सत्ता के गलियारों में आवाजाही करते रहते हैं। ये चारण जैसे लोग कवि की जमात में सबसे पहले शामिल होते रहे हैं, अपने समय में हमे उन्हें पहचान लेना चाहिए- क्योंकि कविता का मार्ग सत्ता के गलियारों से होकर नहीं जाता। कबीर और तुलसी हों या निराला और मुक्तिबोध, ये सब सत्ता से दूरी बनाकर रहे। इसीलिए कालजयी हैं। कविता में कुछ लोग आज अति सक्रिय भी दिखाई दे सकते हैं लेकिन कविता के मार्ग में अति का स्थान नहीं होता। कविता मानवी है, वह मानवीय संवेदना का स्वर होती है। अतिचार हमें कहीं न कहीं अमानवीय बनाता है।

सदियों से कवियों ने कविता के द्वारा हमें समरसता का पथ सुझाया है। बुद्ध का मध्यम मार्ग ही जीवन की सहज शैली है। कविता भी सहजता के सौन्दर्य से हमें अपनी ओर खींचती है। सत्ता का विरोध कवि-आम आदमी की पीड़ा को सहलाने के लिए करता है या कि सत्ता हासिल करने के लिए अथवा केवल समस्या उत्पन्न करने के लिए। समाज और सामाजिक समूहों को समाधान भी चाहिए। इस पक्ष पर भी विचार होना चाहिए।

राजनीति से साहित्य तक मंच हुए उच्छृंखल : सेवाराम त्रिपाठी

मंचों पर कैसे थमे प्रपंच, यह एक महत्व पूर्ण मुद्दा भी है, सवाल भी, जिस पर विचार होता आया है। चिंता वाजिब है। कबीर का कहना याद आ रहा है, सांच कहौं तो मारन धावै, झूठे जग पतियाना, सन्तो रे देखो जग बौराना। तो कविता पर विचार-विमर्श और विचार-मंथन लम्बे समय से हो रहा है। दुनिया का कौन-सा विषय है, जो कविता में नहीं आता। छंद में या छंद से बाहर, कविता लिखने का कोई बंधा बंधाया फामूर्ला नहीं हो सकता। कविता कैसे लिखी जाय लेकिन उसकी हैसियत है, जिससे, जो सधता है, उस तरह वह लिख सकता है। मंचीय कविता और सामान्य कविता में पहले भी फर्क था और आज भी है। मंच का भी एक सुदृढ़ बाजार और समाजशास्त्र रहा है। कवि मंचों से टीवी तक जो कविताएं गुनगुना रहे हैं, उनमें कुछ स्तरीय होती हैं, कुछ ऐसे ही, इसे आप तथा कथित लोक प्रियता में माप सकते हैं।

मंचों से काका हाथरसी ने, और न जाने कितने ने वाहवाही लूटी। आज तो रसों का मनोरंजन का बाजार बढ़ा है। अमूमन एक कवि सम्मेलन में तरह-तरह के रसवादी, मनोरंजनवादी कवि बुलाये जाते हैं। उनकी अनेक तरह की कोटियां हो गयी हैं। मंच की कविता का सम्बंध गले से और खूबसूरती से जोड़ दिया गया है। प्रायः कोई गम्भीर कवि मंचों पर नहीं बुलाया जाता है। हंसोड़, गलेबाज और दर्शनीय ही बुलाये जाते हैं। मंच ठेके पर भी उठने लगे हैं।

बाजार की चुनौतियां पहले भी थीं, अब भी हैं। पैसों का प्रपंच पहले भी था, आज भी। अजीब-अजीब नाम रखने का चलन है, ये पहले भी था। कोई सूंड़, कोई पटाखा, कोई अगिया बैताल, कोई फुलझड़ी। बाजार की दुनिया है। कहीं धूप, कहीं छाया। चुनावों में क्या होता है। कोई सीधा-सच्चा जन हितैषी क्या टिकट पा सकता है। और लड़े तो क्या जीत हासिल कर सकता है। अपराधी और बाहुबली, जालसाज, तिकड़मी, नारेबाज, वादा पीटू चुनाव जीत रहे हैं। पैमाने बदले हैं। जैसा समाज होगा, जैसी सामाजिक व्यवस्था होगी, वैसा ही घटित होगा।

रमेश रंजक, बलबीर सिंह रंग, फिराक गोरखपुरी, बेकल उत्साही, उमाकांत मालवीय, बुद्धिनाथ मिश्र, मुकुट विहारी सरोज, सोम ठाकुर और गोपालदास नीरज भी तो मंचों के यशस्वी नाम हैं। अब कुछ दिखाऊ, कुछ कंठबाज। अब मंचों की गरिमा बची कहाँ है। अच्छे कवियों को कौन पूछता है। ऐसे कवियों को सुनने की किसमें ललक दिखती है। अदम गोंडवी भी मंचों पर सुनाते थे लेकिन फिट होने का तंत्र दूसरों के पास होता था। कविता चुटकुलों में उतर आई है। राजनीति के बड़े आयामों को छोड़ कर व्यक्तिवाद का महा मायाजाल फैल गया है। उसी धुरी पर वह नाच रही है। जनहितैषी पुरखे नेताओं की छवि को पीट रही है। मुद्दे उछल-कूद कर रहे हैं। मनमानापन पसर रहा है। वैसे ही कवि मंचों पर उखाड़-पछाड़ ज्यादा हो रहा है। गम्भीरता निरन्तर गायब होती जा रही है।

विचार बड़ा है या मनुष्य की संवेदना, जीवन तार्किकता से संचालित होता है या पाखण्ड से? कविता दोनों बिन्दुओ के संतुलन पर अवलंबित होती है। वाल्मीकि से सहज रूप में पीड़ित का पक्ष लेती हुई आदि कविता -'माँ निषाद प्रतिष्ठा त्वमगमः शाश्वती समाः/यत क्रौन्चमिथुनादेकम अवधीः काममोहितम।' आज भी जीवन की व्यापक संवेदना और मानवीय सरोकारों से भटकी नहीं है। हाँ, ये अवश्य है कि हम ऐसे कवियों को खोजने में सफल नहीं हो पा रहे हैं, जो गहरे मानवीय सरोकारों से जुड़कर संतप्त जनों के अवसादों की व्याख्या करते हैं। ऐसे कवियों को खोजने के लिए

व्यापक जन संवेदनाओं के अरण्य में घुसना होगा। ऐसे कवि मंच पर स्वतः चढ़ने के लिए उद्यत खड़े नहीं मिलेंगे।

तात्पर्य यह कि हमने अपने समय में श्रेष्ठ कविता, श्रेष्ठ कवि और उसके महत्त्व को विस्मृत कर दिया है। बहुत कम संपादक होंगे, जो कवियों से कविताएं आमंत्रित करके प्रकाशित करते हैं। अब तो संपादक रचनाओं को लेकर प्राप्ति की औपचारिक सूचना तक नहीं देते। संपादकों और समीक्षकों का नकली अहंकार बढ़ा है। असल में उनके पास ज्यादा कुछ है भी नहीं। वे मात्र कारोबारी बन कर रह गए हैं। अब बड़बोलेपन से भ्रमित करती हुई कविताएं या फिर किसी एक नेता या राजनीतिक दल के पीछे भागने वाले कवियों की पंक्तियों में एक दिन की सुर्खी बन जाने की क्षमता हो सकती है, लेकिन उन कविताओं में जीवन का निहितार्थ नहीं रहता।

कुछ तो फैशन में लिखी जाने वाली कविताए हैं, जिनमें चौंकाने के लिए कवियों द्वारा बड़ी जतन की जाती है। कुछ समस्यापूर्ति की परंपरा निभाती हुई भी लिखी जा रही है- कि चलो भाई गुलाब पर एक कविता लिखनी है। दीपावली, ईद या फिर 15 अगस्त पर कविता लिखनी है, मंच के लिए, या फिर माँ झपर कविता लिखनी है ताकि वह किसी संकलित होने वाली पुस्तक में खप जाए।

मेरा मानना है कि ऐसी कविताओं में संवेदना और कविता के मौलिक सरोकार नहीं होते। ऐसी कविताएं किसी इवेंट की तरह पैदा होती हैं और उसी तरह तात्कालिक प्रभाव डालकर नष्ट हो जाती हैं। ऐसी क्षणजीवी कविताएं भी लोग हमारे इस बाजारू समय में लिख रहे हैं। कुछ खास उत्पाद बेचने के लिए अमिताभ बच्चन भी कविता बोलते हुए नजर आते हैं, मेरे हिसाब से उन बाजारू विज्ञापनों का साहित्य की दृष्टि से कोई महत्त्व नहीं है। उनका नष्ट होना भी स्वाभाविक है। तथापि इस सबके बावजूद जो बची रह जाती है, वही कविता है, जो नष्ट हो जाती है या नष्ट होती हुई दिखाई दे रही है, वह कविता है ही नहीं।

कविता किसी मंच या प्रपंच से जुड़ी नहीं रह सकी। माना कि यह संक्रमण का समय है कुछ

चारो ओर छाए हुए ठेकेदार और पिछलग्गू : शैलेंद्र शर्मा

आज चुटकुलेबाज कवि ही मंचों पर छाए हुए हैं। जिस किसी मंचीय कवि के पास साल में एकाध कवि सम्मेलन अपने स्तर से करने/कराने का जुगाड़ होता है, वह अपने सम्पर्क /जुगाड़ के बदौलत आयोजन का ठेका ले लेता है और अपने पिछलग्गुओं की टीम जो अधिकांशतः दूसरे /तीसरे दर्जे की होती है, उसे मंचीय रेवड़ियाँ बाँट कर संयोजन की वल्गाएँ थमाकर देश-विदेश का भ्रमण करता रहता है। हाँ, एक-दो ठीक-ठाक कवि टीम में रखना सफल आयोजन के लिए उसकी मजबूरी होती है पर ऐसे में वह अपनी विधा से इतर कवियों को ही अपनी टीम में स्थान देता है, जिससे कोई उसका स्थानापन्न न बन सके। अब बेचारी जनता तो उसी का आस्वाद लेगी, जो उसे परोसा जायेगा।

ऐसा नहीं है कि स्तरीय कवियों का टोटा है। वे हैं, और अच्छी-खासी संख्या में हैं पर न तो उनके पास आयोजन हैं और न ही वे संयोजक बनने के लिए उस स्तर तक जा सकते हैं जिस स्तर तक व्यवसायी कवि चले जाते हैं। समस्या है, ऐसे लोगों से मंच को निजात दिलाने की। इसके लिए सदेच्छुकों को, चाहे वे आयोजक हों या कवि, धैर्य व निष्ठा के साथ पूर्ण समर्पण भाव से कार्य करना होगा। पहली और महत्वपूर्ण बात यह है कि आयोजकों को दृढ़-प्रतिग्य होना पड़ेगा कि वे स्तरीयता से समझौता नहीं करेंगे। दूसरे, वास्तव में जो कवि हैं और मंच का भला चाहते हैं, उन्हें कवि सम्मेलनों को अपनी आय का स्रोत न मानकर समर्पण की भावना से स्तरीय मंचों पर अपना योगदान करना होगा। ऐसे स्वस्थ मंचों की शुरूआत हमारी नौजवान पीढ़ी के ऊजार्वान कवि स्वयं कर सकते हैं।

हरिशंकर व्यास कहते हैं कि जो जितनी खूब सूरत है, भाव, मोल भी उसका ही निःसंदेह ज्यादा हुआ करता है। शब्द चमत्कृत हैं, सुन्दर हैं, ओज से भरपूर हैं आदि बातें। उसके भाव-सम्प्रेषण पर निर्भर करते हैं। मेरे निजी विचार से इनको अर्थ प्रपंच से बचाना, असाध्य रोग का गलत दवा से उपचार करने जैसा होगा।

श्रोताओं को रिझा कर धन का जुगाड़

हरी सिंह लिखते हैं - यदि यह कहा जाय कि आज प्रपंच का ही बोलबाला है, तो इसमें अतिशयोक्ति न होगी। कवि मंचों पर ही पैसे का प्रपंच नहीं है, जीवन का हर क्षेत्र इससे प्रभावित है। मंचीय कवियों के मन में भी यही धारणा घर कर गई है कि साम, दाम, दण्ड, भेद की नीति अपना कर, स्वयं को श्रेष्ठता की शीर्ष सूची में दिखा कर, विभिन्न कवि सम्मेलनों के माध्यम से, अधिकाधिक धन कमाया जाय। आज के समय में सूर, कबीर, तुलसी या अज्ञेय, जयशंकर प्रसाद, महादेवी वर्मा जैसे विद्वान कहाँ। हैं भी तो, वे भी अपनी लेखनी से धन कमाना चाहते हैं। जो विद्वान पहले किसी साहित्यकार पर शोध कर नामवर हुए हैं, वह भी मंचों के धन-प्रपंच में लिप्त हैं।

साहित्य के मंच पर मनोरंजन परोसने से साहित्य का स्तर गिर रहा है। श्रोताओं को रिझा कर धन जुगाड़ना आज के मंचीय कवियों की नियति बन गई है। प्रतिभाशाली कवि कम नजर आ रहे हैं। ऐसे ही कवियों का एक दूसरा वर्ग भी है, जो मंच से कोसों दूर रहकर अपनी रचनाओं का प्रकाशन प्रकाशक को पैसे देकर करवाता है। सबसे पहले आयोजकों को चाहिए कि आमन्त्रित कवियों की पाठ से पूर्व कविता गंभीर कवियों से अनुमोदित हो। कवि सम्मेलनों को वगीर्कृत किया जाए। जैसे श्रोता, वैसी कविता। लालची, चुटकुलेबाज कवियों का बहिष्कार कर किया जाय। हास्य और व्यंग्य का अपना एक स्तर हो।

छंदोबद्ध कविताओं को प्राथमिकता मिले। प्रतिभावान नवोदितों को ससम्मान आमन्त्रित किया जाना चाहिए। वे कल का भविष्य हैं। आयोजकों को इस आदत से बाज आना होगा कि तू मुझे बुला, मैं तुझे बुलाऊँगा। दलित साहित्यकारों को कवि सम्मेलनों में आमन्त्रित किया जाना चाहिए। कवियों को मानदेय उनकी कविता की गुणवत्ता के आधार पर देने चाहिए, न कि जोड़-जुगाड़बाजी के आधार पर। इसके लिए समाज के जागरूक और बौद्धिक वर्गों को भी हस्तक्षेप करना होगा।

ऊबे हुए लोगो को लगता है कि कविता नष्ट हो रही है परन्तु ऐसा नहीं है- शोषित-पीड़ित मानवता के अनेक पक्षों पर आज भी कविताएं लिखी जा रही हैं। स्त्रियाँ लिख रही हैं, दलित लिख रहे हैं, आदिवासी लिख रहे हैं, नव साक्षर लिख रहे हैं, किशोर और किशोरियां, बड़े और बूढ़े अनेक तरह की पीढ़ियों के लोग एक साथ लिख रहे हैं। जिन शब्दों में संवेदना की सार्थक आंच होगी, वो बचे रहेंगे। अब ये संवेदना की सार्थकता तो सतत साधना से आती है।

दूसरी ओर, जैसा कि हमारे रीतिकालीन कवि ठाकुर ने कहा था- 'लोगन कवित्त कीबो खेल करि जान्यो है।', तो ये सच है कि लोग आज बहुत जल्दी में हैं। कुछ लोग रोज नियम से कविता लिखने में लगे है। अब इंटरनेट पर स्वयं प्रकाशित करने की भी सुविधा मिल ही गयी है तो कविताई खेल हो गयी है। शैली, शिल्प और लय का अनुशासन समाप्त हो चुका है। आचार्य जानकीवल्लभ शास्त्री के शब्दों में कहें तो झ'सब अपनी अपनी कहते हैं/कोई न किसी की सुनता है/नाहक कोई सर धुनता है।'

हमें कविता की संवादधर्मिता को बचाना है। कविता की लय टूटी है तो उसे सहेजना होगा। देश के ज्यादातर विश्वविद्यालयों में कविता की बात करने वाले प्राध्यापकों का भी अभाव हो गया है। जहां तक मैं जानता हूँ, अब हिन्दी के आदिकाल, मध्यकाल की कविता को समझने और समझाने वाले विद्वान अध्यापक वहां नहीं बचे हैं। अनेक प्राध्यापक और संपादक ऐसे भी मिल जायेंगे जो कविता की भारतीय परंपरा के बारे में ज्यादा कुछ जानते भी नहीं है। आगे के लिए संभावना भी नहीं है। हमारे नए कवि केवल लिख रहे हैं, वे पढ़ते नहीं हैं। वे अपनी पसंद के कवियों को पढ़कर शुरू में उनकी नकल भी करते तो कुछ समय बाद असल कविता के मार्ग पर पहुँच जाते।

नए कवियों के पास कविता समझने और पढ़ने के लिए समय नहीं है। वे चाहते हैं कि दूसरे लोग उसे पढ़ें और सराहना भी उसे मिले। अक्सर देखा गया है कि श्रेष्ठ कविता कवि के यश और स्वाभिमान से आगे बढ़ जाती है। वह कवि से बड़ी हो जाती ह।`जैसे झप्रसाद की कामायनी, निराला की झराम की शक्तिपूजा, अज्ञेय की असाध्य वीणा, मुक्तिबोध की झअँधेरे में, नागार्जुन की झअकाल के बाद, त्रिलोचन की झनगई महरा , आदि हमारे समय की बड़ी कविताएं हैं। अब मुक्तिबोध कहते हैं- 'कविता पोस्टर है' तो हमें इस बात पर विचार करना होगा कि वो कौन सा पोस्टर है, जिसमे कविता भी होती है। आज के विज्ञापनों के पोस्टरों में तो कविता नहीं मिलेगी। इसी प्रकार नौवें दशक में एक समय यह चर्चा जोर-शोर से हो रही थी कि छन्दोबद्ध कविता का समापन हो गया है और गीत नवगीत चुक गया है। कुछ स्वनाम धन्य कवियों ने भी कहा कि गीत नवगीत खत्म हो गया है। उसमे

पैसा न लें तो जिएं कैसे?

अमित शर्मा कहते हैं- क्या वही दौर लाना चाहिए कि कवि भूखा मरे और उसके फोटो पर माला चढ़ाकर 10 लोग गोष्ठी करें? जब एक अश्लील गायक 50 लाख रूपए लेता है तो कवि नहीं ले सकता? मैं अपना शत प्रतिशत साहित्य को देता हूँ, अगर मैं पैसा लेना बंद कर दूँ तो फिर कैसे जी पाऊँगा? विवेक प्रजापति का कहना है कि कवि अपनी जेब से पैसे लगाकर दूर के मंचों तक भला कैसे जा सकता है। एक-दो बार तो कोई भी कर सकता है लेकिन हर बार नहीं। कुछ लोग चाहते हैं कि उनके कार्यक्रम में बड़े-बड़े कवि मुफ्त में आ जाएं और उनका नाम हो जाये परन्तु ऐसा न तो होगा और न होना चाहिए। कुछ लोगों ने तो शॉर्टकट भी निकाल लिया है। कुछ नए कवि, जो अच्छा पढ़ते हैं, उन्हें बुलाओ, प्रोग्राम करो और संयोजक के रूप में मशहूर हो जाओ। जब खुद को प्रोग्राम मिलने लगे तो पैसे की डिमांड करो।

अचल फिरोजाबादी लिखते हैं- कविता किसी एक कवि के प्रयास से नहीं बच सकती। इसके लिए सामूहिक प्रयास की जरूरत है। जाति, धर्म, सम्प्रदाय आदि से ऊपर उठ कर सिर्फ देश हित के लिए साहित्य की रचनाएँ की जाएँ। इसे रोजी रोटी का साधन न बनाकर सिर्फ शौक और आत्मसुख के लिए रचा जाए। साहित्य को राजनीति से बचाने का भरसक प्रयास किया जाए। सामाजिक कुरीतियों, अन्धविश्वास आदि मुद्दों को निशाना बनाकर व्यंग्यात्मक रचनाओं को प्रोत्साहन दिया जाए।

सीमा सिंह का मानना हैं कि इसकी शुरूआत हमें अपने घर से करनी होगी, यानि अपने आप से। जब तक हम किसी भी समस्या की जड़ तक नहीं जाने की कोशिश करेंगे, यह यूँ ही चलती जायेगी, बढ़ती जायेगी। कोई भी धंधेबाज धन बल से पूरा वातावरण बिगाड़ दे रहा है। तारा गुप्ता

की कहती हैं, इसके लिये मानक निर्धारित करने होंगे। मानक निर्धारित करने की जिम्मेदारी विशेषत 'सरकारी पुरस्कार' प्राप्त करने वाले बड़े सहित्यकारों की होनी चहिए। अवधेश चतुर्वेदी कहते हैं कि सस्ती लोकप्रियता हासिल करने चक्कर में कविता अपनी मूल भाव को खो देती है। कालजयी रचना के लिए सतत साधना करनी पड़ती है, जो आज कल दुर्लभ है।

लतिका बत्रा लिखती हैं- प्रपंच की आवश्यकता ही क्या है। ये तो एक स्वाभाविक स्वस्थ प्रक्रिया होनी चाहिए। कवि का मानदेय उसे सम्मान सहित देना चाहिए। रचना कर्म में जुड़े व्यक्ति से ये अपेक्षा की जानी कि वो बिना पैसा लिये, बिना यतायात शुल्क लिये, बिना भोजन व रहने की व्यवस्था के, एक शहर से दूसरे शहर कविताएं पढ़ने भागता फिरेगा, तो ये उसके साथ सरासर अन्याय है। हर कलाकार की तरह कवियों, लेखकों व आलोचकों के भी अपने तय मानदेय होते हैं, उनसे बिना धन लिये मंच पर प्रस्तुति देने की अपेक्षा करना अन्याय है। अपितु नवोदितों को भी प्रोत्साहन देने के लिये कुछ न कुछ मानदेय अवश्य दिया जाना चाहिए। यही एक अच्छे आयोजक की पहचान हो। हाँ, आमंत्रित कवि और आयोजकों के बीच ये मामले बिना संकोच के पहले ही तय हो जाने चाहिए तथा दोनों पक्षों को तय शर्तों का मान रखना चाहिए। बाद में उपजने वाली कटुता तथा असुविधाओं व शर्मिन्दगियों से बचने का यही एक मार्ग है।

जो श्रेष्ठ था, वह नवगीत दशकों में आ चुका है। तब लगभग पच्चीस वर्ष पहले मैंने एक गीत लिखा था, जिसकी प्रारम्भिक पंक्तियाँ हैं- हम न होंगे गीत होंगे/क्योंकि ये हमसे बड़े हैं। ये समय की सीढ़ियों पर /रत्न मणियों से जड़े हैं।

तमाम नकारात्मक नारेबाजी के बावजूद मुझे कभी नहीं लगा कि गीत नष्ट हो जाएगा या कि कविता नष्ट हो जायेगी याकि दुष्यंत और अदम गोंडवी के बाद हिन्दी गजल खत्म हो गई है। मुझे लगता है कि निराश होने की बात नहीं है लेकिन संपादकों और प्राध्यापकों की जिम्मेदारी बढ़ी है कि वे कविता की समग्रता का आदर करें, जिसमें किसानों, मजदूरों, दलितों और स्त्रियों के लिए भी अवकाश हो। विद्यार्थियों को कवितापाठ सिखाने वाले अध्यापकों की पीढ़ी भी धीरे-धीरे हमारे विद्यालयों से कम हो रही है। नई पीढ़ी के शिक्षकों को छंदोबद्ध कविताओं का वाचन करना नहीं आता। उनके प्राध्यापकों ने उन्हें नहीं सिखाया। अब वे भी अपने विद्यार्थियों को कैसे सिखायेंगे।

कविता समग्र रूप से संस्कृति का प्रतिनिधित्व करती है। इस समग्रता का सभी को सम्मान करना होगा। हवा में तैर रहे या खबरों में छाये हुए कवियों के अलावा साधक कवियों की पहचान की जाए। युवा छात्रों और कवियों के सामने हर विधा के साधक कवियों का कविता वाचन हो। खुले मंचों से प्रश्न सत्र हों। बस संयोजक अथवा संपादक अपनी एक ही विचारधारा को थोपना बंद करें। सत्ता के प्रतीकों की जमकर आलोचना भी करें। कविता की संस्कृति में परिष्कार की आवश्यकता है।

कवियों की संख्या को देखते हुए, काव्य के लिए होने वाले आयोजनों/प्रकाशनों आदि को देखते हुए ये तर्क भी गलत साबित होने लगा है कि यह समय गद्य का है। कविता नेपथ्य में कभी नहीं गयी। बस उसमें अपेक्षित परिष्कार की लगातार आवश्यकता बनी हुई है। जबतक ये समाज है, तब तक अच्छी कविताएं सदैव जीवित रहेंगी। असल में कविता किसी युग में नष्ट नहीं हुई, न आगे भी होगी। कबीर ने भी यही कहा था-'हम न मरें मरिहै संसारा।'

इसके अतिरिक्त हिन्दी की एक भाषा चेतना है, जो क्रमशः संस्कृत, अपभ्रंश, पाली, प्राकृत, ब्रज, अवधी, बुन्देली, मैथिली, भोजपुरी, राजस्थानी, दक्खिनी अंगरेजी जैसी अनेक प्राचीन और नवीन भाषाओं, लोकभाषाओ और बोलियों से लगातार जुड़ी है। हिन्दी की कविता भी भाषा की इस सामासिक व्याकरण के बिना सुरक्षित नहीं रह सकती। अतैव हिन्दी कविता को समृद्ध करने के लिए हिंदी की जड़ों को भी मजबूत रखना होगा। आशा है, आगे विद्वान इस विषय पर भी बात करेंगे।

बड़े कवियों को मंच पर जाना चाहिए : यश मालवीय

तालाब निर्मल करना है तो कीचड़ में उतरना होगा

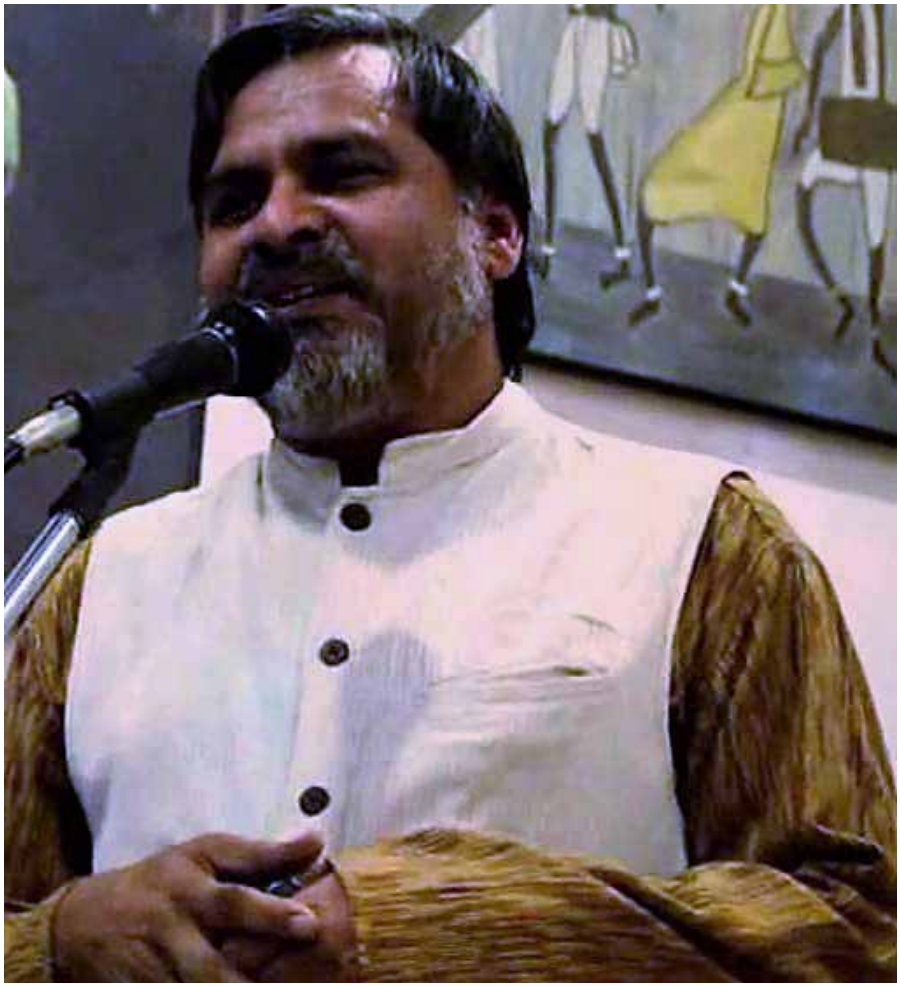

'कहो सदाशिव', 'उड़ान से पहले', 'एक चिड़िया अलगनी पर एक मन में', 'बुद्ध मुस्कराए', 'एक आग आदिम', 'कुछ बोलो चिड़िया', 'रोशनी देती बीड़ियां, 'नींद कागज की तरह', जैसे कविता संग्रहों के सशक्त रचनाकार यश मालवीय एक ओर हमारे समय के सच को इन शब्दों से ललकारते हैं - 'अपने भीतर आग भरो कुछ, जिससे यह मुद्रा तो बदले, इतने ऊँचे तापमान पर शब्द ठिठुरते हैं तो कैसे, शायद तुमने बाँध लिया है, खुद को छायाओं के भय से, इस स्याही पीते जंगल में कोई चिनगारी तो उछले'.....तो दूसरी ओर बच्चों की बोल-भाषा में आदमी से लेकर व्यवस्था तक के लिए सहज-सहज सब कुछ कह जाते हैं - 'टीवी की शौकीन हमारी नानी जी, खाती हैं नमकीन हमारी नानी जी, जीवन बीता कभी मदरसे नहीं गईं, भैंस के आगे बीन हमारी नानी जी'। एक वक्त में गीत-नवगीत के अमिट हस्ताक्षर रहे उमाकांत मालवीय के यशस्वी पुत्र यश मालवीय के शब्दों से आज पूरा हिंदी साहित्य जगत सुपरिचित है। पिछले दिनो 'कविकुंभ' से विशेष बातचीत में उन्होंने कहा कि मंचों पर बड़े कवियों को जाना चाहिए। मंचों से पलायन नहीं करना चाहिए। अगर तालाब को निर्मल करना है तो कीचड़ में उतरना ही होगा। तभी जलता रहेगा कविता का दीया। (यश मालवीय से लोकेश श्रीवास्तव की विशेष बातचीत)

प्रश्न : मंच के प्रपंच में कविता कैसे बची रहे, ताकि शब्दों की दुनिया खूबसूरत बनी रहे?

यश मालवीय : हमारे समय का यह सबसे गंभीर प्रश्न है। मंचों पर बड़े कवियों को जाना चाहिए। उनको मंचों से कत्तई पलायन नहीं करना चाहिए। अगर तालाब को निर्मल करना है तो कीचड़ में उतरना ही पड़ेगा। सच बात तो ये है कि जब मैं मंचों से वापस लौटता हूँ तो मुझे ग्लानि होती है लेकिन पिता का एक तर्क था, जगह तो खाली रहेगी नहीं, कोई न कोई भाड़, नौटंकीबाज जगह ले लेगा। मैंने एक कविता लिखी - 'जिनका मुंह देखना न भाये, उनके संग पालथी जोड़ो, अच्छा है उनसे मुंह मोड़ो।' फिर लगा, यह उचित नहीं। मंच छोड़ेंगे तो उसका गिरना तो रुकेगा नहीं। मंचों पर जो कविता बची थी, बड़े कवियों ने उसे खाली छोड़ दिया तो लाफ्टर के कवि हावी हो गये हैं। अब वे द्विअर्थी राजनीतिक चुटकुले परोस रहे हैं। कविता, मंच की हो या कागज की, मेरे लिए तो एक जैसी है।

प्रश्न : आप अपने सृजन-मन के लिए पिता स्वर्गीय उमाकांत मालवीय की किस रचना को सबसे प्रेरक मानते हैं?

यश मालवीय : वह रचनात्मक स्वाभिमान के कवि थे। मुझे उनका वही गीत सबसे प्रिय है, जो उन्हें भी अत्यंत प्रिय था - 'सूर्य कभी कौड़ी का तीन नहीं होगा, जन्म से मिली जिसे कठिन अग्नि दीक्षा, क्या है संकट उसे औ' क्या है परीक्षा, सोना तो

सोना है, टीन नहीं होगा।' वह इस बात के आग्रही नहीं थे कि कोई उनके चरण-चिन्हों पर चले। वह एक प्रसंग बताते थे कि वनगमन में लक्ष्मण, राम के पीछे चले, तो किसी ने कहा कि आप तो राम के चरण-चिन्हों पर चल रहे होंगे। तो लक्ष्मण बोले - भाई, उनके चरण-चिन्ह मेरे माथा टेकने के लिए हैं। चलने के लिए तो मैं अलग रास्ते पर चलता हूँ। उमाकांत जी के एक गीत की पंक्तियां हैं- 'मैं तुम्हारे चरण-चिन्हों पर चलूँ, मैं तुम्हारे दिये सांचे में ढलूँ, ऐसा दुराग्रह क्यों, ऐसी दुराशा क्यों, भीख में पाये उजाला सूर्य से, मैं निकम्मे चन्द्रमा सा जलूँ, ऐसा दुराग्रह क्यों, ऐसी दुराशा क्यों।' वैसे तो उनका कुल लेखन ही, वह गद्य हो, पद्य हो, बाजार से लड़ती हुई कविता है। उसी बाजार के विरुद्ध हम अपनी रचनात्मकता को सार्थक कर सकते हैं।

प्रश्न : आपको अपनी कौन-सी रचना सबसे प्रिय है?

यश मालवीय : अगर आपके चार बच्चे हों तो आप कहिए कि इससे ज्यादा प्यार है या उससे ज्यादा प्यार है, मुश्किल है न? सब तो हमारे अस्थि-मांस-मज्जा से निकले हुए हैं, जेहन से, तबीयत से निकले हुए हैं। बावजूद इसके इस सवाल पर, जेहन में तत्काल वही कविता आती है, जो मेरे लिए कविता नहीं, प्रार्थना है। पिता वाला गीत। उसने हमें लगातार एक पिता के आशीष के रूप में साथ खड़े रह कर रोशनी दी है। और दूसरी कविता है रामसुभग। रामसुभग ने हमको वहाँ-वहाँ पहुँचा दिया, जहाँ-जहाँ आज बिजली भी नहीं पहुँची है, सीवर लाइन नहीं पहुँची है। कविता का दीया ऐसे जलता है और अब तो यह कविता पश्चिमी बंगाल के पाठ्यक्रम में भी है। वैसे अब तक मेरे 10 गीत संग्रह आ चुके हैं। उनमें से कुछ गीत ऐसे हैं कि अगर मुझे नींद से जगा दिया जाए तो भी मैं उसी रौ में पढ़ सकता हूँ।

सच संत्रस्त हुए

धधके सूरज से संध्या की बेला, अस्त हुए।
विन्यासों के विनयशील से हम विन्यस्त हुए।
एक दुपहरी थी, दुपहर का ताप तेज भी था,
बीच डायरी मई-जून का खुला पेज भी था,
नहीं मिल सके अपने से ही इतने व्यस्त हुए।
भागदौड़ थी, हांफ रहे से सन्नाटे भी थे,
मन में उठते हुए ज्वार के संग भाटे भी थे,
आसमान तक उठे किले की सूरत ध्वस्त हुए।
हर सिंगार वाले घर पर भी कुंडी-ताले थे,
खुशबू का दम रहे घोटते, जो रखवाले थे,
एक तरह से जीते जाने के अभ्यस्त हुए।
रोशनियों में आड़े-तिरछे से अंधियारे थे,
आपस में ही उलझे-सुलझे से गलियारे थे,
सांस-सांस में संत्रासों के सच संत्रस्त हुए।

हुआ नपुंसक समय

हुआ नपुंसक समय कि सब पौरुष की दवा खरीद रहे।
कैसी मदार्नी इच्छाएं, इच्छाओं की कौन कहे?
'मर्दानगी' शब्द है कैसा, छिलका-छिलका उतर रहा,
कोई दीमक जैसा भीतर-भीतर जैसे कुतर रहा,
मां, बहनों, प्रेयसी, प्रिया के अर्थ खो गए रहे-सहे।
महाबली हैं सब, औरत के आगे धनुष उठाने में,
बहुत पुराने किस्से लेकर बैठे नए जमाने में,
अस' पराजय के मौकों पर आंखों से चुपचाप रहे।
कोमलकांत पदावलियों के कितने कठिन, कठोर किले,
देख नहीं पाते टहनी पर जब भी कोई फूल खिले,
शिकन भरे मंतव्य लिहाफों के दिखते हैं तहे-तहे।

हम कहां होंगे

हम कहां होंगे, कहां इतिहास होगा।
हां, मगर तय है कि ये आकाश होगा।
नोंक टूटी व्यवस्था की कील होगी,
बत्तखों में बोलती सी झील होगी,
दूर होगा जो, वही बस पास होगा।
सल्तनत के नए भामाशाह होंगे,
बारिशें होंगी कि अंतरदाह होंगे,
चुप रहेगा जो कि जिंदा लाश होगा।
आत्मा पर बघनखों की तज खरोंचें,
बहुत अच्छा हो कि हम कुछ नया सोचें,
मन कभी भी नहीं अपना दास होगा।
मुक्ति बोध की नई पीढ़ियां होंगी,
रोशनी देती हुई नई बीड़ियां होंगी,
आम का जो दर्द होगा, खास होगा।

अच्छे कवियों की राह रोक रहे गोलबाज

ज्ञानचंद्र मर्मज्ञ

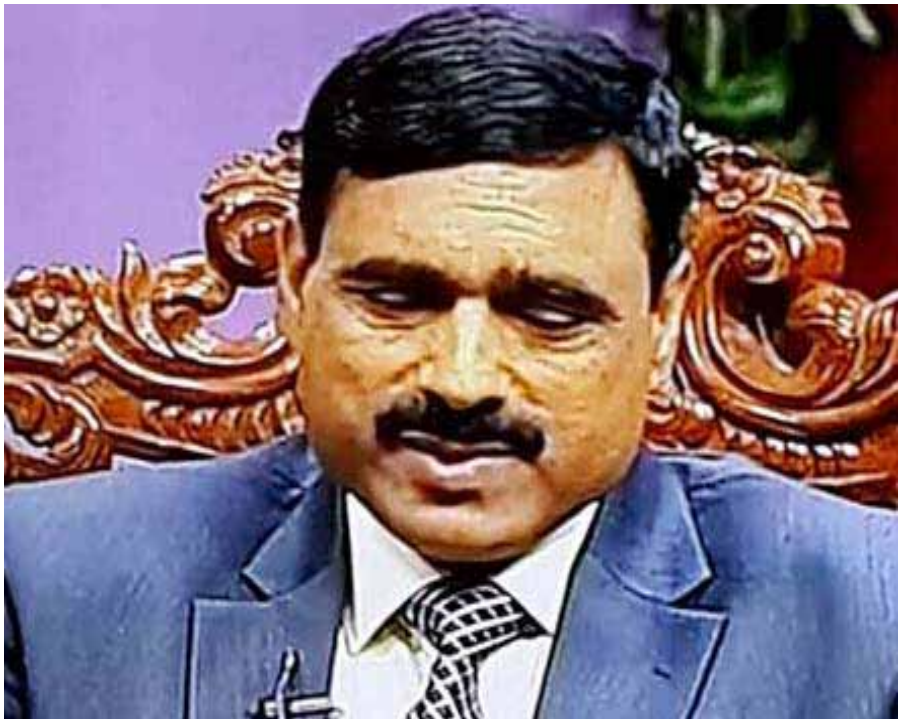

एक समय था, जब मंच पर साहित्यिक कविताओं का सम्मान हुआ करता था और लोग बड़े चाव से उन्हें देर तक सुना करते थे परंतु समय के साथ व्यवसायिकता ने अपना पैर पसारना शुरू कर दिया, जिस-ाके फलस्वरूप कविता हाशिये पर चली गयी और उसकी जगह अकविता ने ले लिया।

आज मंचों पर सस्ती लोकप्रियता का बोलबाला है! कविता के नाम पर चुटकुले, चुलहबाजी और द्विअर्थी तुकबंदियाँ परोसी जा रही हैं। श्रोताओं ने भी इसी को कविता समझ लिया है। इस स्थिति के जिम्मेदार वे कवि हैं, जो पैसे और सस्ती लोकप्रियता के लिए अपनी लेखनी से समझौता करते हैं और गुटबन्दी करके अच्छे कवियों को मंच पर आने से रोकते हैं।

इस स्थिति से उबरने के लिए सबसे पहले चुटकुले और अश्लील मजाकों को परोसने वालों (जो कवि नहीं होते) को कविता के मंच से बहिष्कृत करना होगा और हर कवि सम्मलेन के बैनर के पहले लगने वाले 'हास्य' शब्द को पूरी तरह हटाना पड़ेगा। इससे जहाँ एक तरफ कविता को मंच पर स्थापित होने का अवसर मिलेगा, वहीं हम श्रोताओं के साथ हम पूरी तरह न्याय भी कर पाएंगे।

आज बाजारवाद ने हमें कृत्रिमता की आँधी में धकेल दिया है। लोग भाग तो रहे हैं परन्तु कहाँ पहुँचना है, इसका पता किसी को नहीं है। बस थोड़ी चमक देखी और पीछे दौड़ने लगे। ऐसी स्थिति में हमारी सोच का दायरा भी संकुचित हुआ है और हमारी रुचि की दिशा भी बदली है हम चौपाल की संस्कृति छोड़कर 'मॉल' की संस्कृति अपना रहे हैं। मैं समझता हूँ, इस गिरावट का मुख्य कारण हमारा अपनी जड़ों से विस्थापित होना है।

नए सृजन की बात करो
नव विहान है, नयी किरन की बात करो।
नए स्वप्न की, नए सृजन की बात करो।
शिथिल प्राण की सहमी सांसों को थामे,
गंतव्यों से दूर खड़ी है अभिलाषा,
गतिविहीन पदचापों को सुनना छोड़ो,
उठो बदल दो संकल्पों की परिभाषा,
उड़ना है तो चलो गगन की बात करो।
नंगे पाँव कभी तपती दोपहरी में,
दुर्गम राहों पर भी चलना पड़ता है,
पर्वत की ललकार साधने वालों को,
कठिन विकल्पों में भी ढलना पड़ता है,
मरुथल में भी वृंदावन की बात करो।
उनके माथे पर लगता है विजय-तिलक,
धार नदी की मोड़ दिया करते हैं जो,
बढ़ जाते हैं तेज हवाओं से आगे,
समय को पीछे छोड़ दिया करते हैं जो,
अँधियारा है, सूरजपन की बात करो।
क्या होगा जब सत्य दिखायेगा दर्पण,
करना भी पड़ सकता है सब कुछ अर्पण,
रंगों का अभिसार भ्रमित कर देता है,
त्याग सकोगे क्या सपनों का आकर्षण,
टूट रहे विश्वास, जतन की बात करो।
रुधिर धमनियों में गर उबला करता है,
निश्चित है कि तुम्ही क्रांति-उद्घोषक हो,
बनोगे तुम ही युग-परिवर्तन के साक्षी,
मानवता के दूत, शांति के पोषक हो,
सम्भव है हर बात, अमन की बात करो।

कविकुंभ

विज्ञापन रेट कार्ड

आवरण अंतिम पृष्ठ रंगीन	रु. 1,00000
आवरण पृष्ठ दो रंगीन	रु. 50,000
आंतरिक पूर्ण पृष्ठ रंगीन	रु. 35,000
आंतरिक अर्द्ध पृष्ठ रंगीन	रु. 20,000

कविकुंभ में विज्ञापन प्रकाशित कराने के लिए:
ई-मेल kavikumbh@gmail.com
अथवा
मोबाइल नंबर: 7250704688/ 8958006501
पर संपर्क किया जा सकता है।

सदस्यता शुल्क

डाक शुल्क सहित वार्षिक	रु. 360
डाक शुल्क सहित त्रिवार्षिक	रु. 1100
डाक शुल्क सहित पंच वार्षिक	रु. 2100
डाक शुल्क सहित आजीवन	रु. 10,000

त्वरित सदस्यता प्रक्रिया के लिए:
ई-मेल kavikumbh@gmail.com
अथवा
मोबाइल नंबर: 7250704688/ 8958006501
पर संपर्क किया जा सकता है।

अवधी-बघेली में माटी की महक

उन कहा कि पीतरि लै आयौ हम कहा बड़ा ध्वाखा होइगा!

उत्तर प्रदेश और मध्य प्रदेश के एक बड़े अंचल में बोली जाने वाली हिंदी की लोकभाषा अवधी और बघेली का भी अनूठा कविता-संसार है। इनमें लिखी कविताओं में माटी की महक होती है। पढ़ीस, मृगेश, वंशीधर शुक्ल, रमई काका, पं.द्वारिका प्रसाद मिश्र, विश्वनाथ पाठक, त्रिलोचन शास्त्री, डॉ. श्यामसुंदर मधुप, बेकल उत्साही, पारस भ्रमर, विकल गोंडवी, जुमई खां आजाद, आद्या प्रसाद उन्मत्त, निर्झर प्रतापगढ़ी, असविंद द्विवेदी, जगदीश पीयूष, विक्रम मणि त्रिपाठी डॉ. विद्या विंदु सिंह जैसे कई अनेक रचनाकारों का अवधी साहित्य में अमूल्य योगदान रहा है। कवि त्रिलोचन का मानना था कि उनकी चेतना का विकास, निर्माण अवध के परिवेश में हुआ। अवध के गांवों को तो मैं विश्वविद्यालय मानता हूं। ह्यनगई महराह्न से बहुत कुछ मैंनें सीखा, वह कहार था- गांजा पीता था पर उसे बहुत से कवियों के कवित्त याद थे। सांईदाता सम्प्रदाय तथा बानादास की कविताएं भी उससे सुनी थीं। उसी के कहने से मैं सांईदाता सम्प्रदाय को जान पाया।

विश्वनाथ त्रिपाठी बताते हैं, रमई काका की कविता 'ध्वाखा होइगा' तो सुनते ही मन में समा गई थी, जो अभी तक याद है-

हम गयन याक दिन लखनउवै, कक्कू संजोगु अइस परिगा,
पहिलेहे पहिल हम सहरु दीख, सो कहूँझकहूँ ध्वाखा होइगा!
जब गएँ नुमाइस द्याखै हम, जंह कक्कू भारी रहै भीर,
दुई तोला चारि रुपइया कै, हम बेसहा सोने कै जंजीर,
लखि भईं घरैतिन गलगल बहु, मुल चारि दिनन मा रंग बदला,
उन कहा कि पीतरि लै आयौ, हम कहा बड़ा ध्वाखा होइगा!

अवधी देश की हिंदी पट्टी की एक उपभाषा है। इसकी एक शाखा बघेलखंड में बघेली नाम से प्रचलित है। 'अवध' शब्द की व्युत्पत्ति अयोध्या से मानी जाती है। इस नाम का एक सूबा मुगलों के राज्यकाल में था। तुलसीदास ने रामचरित मानस में अयोध्या को 'अवधपुरी' कहा है।

शोधकताओं का अनुमान है कि 6 करोड़ से ज्यादा लोग अवधी बोलते हैं। उत्तर प्रदेश के 19 जिलों- सुल्तानपुर, अमेठी, बाराबंकी, प्रतापगढ़, इलाहाबाद, कौशांबी, फतेहपुर, रायबरेली, उन्नाव, लखनऊ, हरदोई, सीतापुर, खीरी, बहराइच, श्रावस्ती, बलरामपुर, गोंडा, फैजाबाद व अंबेडकर नगर में पूरी तरह से यह बोली जाती है, जबकि 6 जिलों- जौनपुर, मिजार्पुर, कानपुर, शाहजहांबाद, बस्ती और बांदा के कुछ क्षेत्रों में इसका मिश्रित प्रयोग होता है। बिहार के दो जिलों के साथ पड़ोसी देश नेपाल के आठ जिलों में यह प्रचलित है। इसी प्रकार दुनिया के अन्य देशों- मॉरिशस, त्रिनिदाद एवं टुबैगो, फिजी, गयाना, सूरीनाम सहित आस्ट्रेलिया, न्यूजीलैंड व हॉलैंड में भी लाखों की संख्या में अवधी बोलने वाले लोग रहते हैं।

जन सामान्य में प्रचलित शब्दों को सुन्दर काव्य में ढालने की कला में पारंगत कवि इन्द्र बहादुर सिंह भदौरिया ने न केवल अवधी में सार्थक साहित्य सृजन किया है, बल्कि हिन्दी खड़ी बोली में भी काफी कुछ लिखा है। अवनीश सिंह चौहान लिखते हैं कि दुर्भाग्य यह है, हमारे देश के गांव-जंवार में रहने वाले तमाम अच्छे साहित्यकारों के रचनाकर्म से साहित्य समाज उस प्रकार से परिचित नहीं हो पाता, जिस प्रकार से होना चाहिए। इसीलिये ऐसे तमाम साहित्यकारों की सर्जना न तो साहित्य की मुख्य धारा में आ पाती है और न ही उन पर चर्चा-परिचर्चा, शोध आदि ही हो पाते हैं।

कई बार तो अच्छी पत्रिकाएं भी उन्हें स्पेस नहीं दे पातीं। इसके पीछे कारण कई हो सकते हैं, होने भी चाहिए। परन्तु, बात तब तक नहीं बनेगी, जब तक इन समस्याओं का निराकरण नहीं होता और अच्छे रचनाकारों को जानने-समझने का माहौल नहीं बनता। सहज, सौम्य एवं मिलनसार कवि इन्द्रेश भदौरिया की प्रकाशित कृतियाँ हैं : बसि यहै मड़इया है हमारि, पीड़ित मन मधुगान गा रहा, गजब कै अँधेरिया है, कुलटा चरित हास्य भण्डारा, 'घटाओं के रंग' आदि। उन्हें कई साहित्यिक, सांस्कृतिक एवं सामाजिक संस्थाओं द्वारा लगभग दो दर्जन पुरस्कार, सम्मान, अभिनन्दन एवं प्रशस्ति पत्र मिल चुके हैं।

अवध क्षेत्र व नेपाल के कई जिलों में बोली जानी वाली अवधी भाषा के कवि इंद्रेश सिंह भदौरिया का जन्म अवधी भाषा के गढ़ कहे जाने वाले रायबरेली जिले के हरचंदपुर ब्लाक के कठवारा ग्रामसभा के मोहम्मदमऊ गांव में हुआ है। अवध ज्योति के सम्पादक एवं अवध भारती समिति के महामंत्री डॉ. रामबहादुर मिश्र ने उनकी कविताओं पर अवधी भाषा के प्रख्यात कवि रमई काका की स्पष्ट छाप देखी है। समय-समय पर उनके लेख अवधी भाषा की पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित होते रहते हैं। उनकी प्रतिभा को देखते हुए अब तक उन्हें प्रगति पत्रिका के दस अंकों में प्रकाशित सर्वश्रेष्ठ रचनाओं पर प्रथम पुरस्कार, प्रज्ञालक मोहम्मदी खीरी द्वारा समस्यापूर्ति उसपार के समादर में तृतीय पुरस्कार का सम्मान मिला है। प्रतिभा अनुसंधान परिषद द्वारा रायबरेली रत्न सम्मान, नगरपालिका परिषद से आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी सम्मान व अवध भारती समिति हैदरगढ़ की ओर से अवधश्री का सम्मान प्राप्त हो चुका है।

इसी तरह बघेली या बाघेली भी, हिन्दी की एक क्षेत्रीय बोली है, जो मध्य भारत के बघेलखण्ड क्षेत्र में बोली जाती है। यह मध्य प्रदेश के रीवा, सतना, सीधी, उमरिया, अनूपपुर, उत्तर प्रदेश के इलाहाबाद, मिजार्पुर आदि जिलों में बोली जाती है। इसके अन्य नाम मन्नाडी, रिवाई, गंगाई, मंडल, केवोत, केवाती बोली, केवानी और नागपुरी हैं। बघेली बोली का उद्भव अर्ध मागधी अपभ्रंश के ही एक क्षेत्रीय रूप से हुआ है। यद्यपि जनमत इसे अलग बोली मानता है, किंतु भाषा वैज्ञानिक स्तर पर पर यह अवधी की ही उपबोली ज्ञात होती है और इसे दक्षिणी अवधी भी कह सकते हैं। कुछ अपवादों को छोड़कर बघेली में केवल लोक-साहित्य है। सर्वनामों में 'मुझे' के स्थान पर म्वाँ, मोही; तुझे के स्थान पर त्वाँ, तोही; विशेषण में -हा प्रत्यय (नीकहा), घोड़ा का घ्वाड़, मोर का म्वार, पेट का प्टवा, देत का द्यात आदि इसकी कुछ विशेषताएँ हैं। इसकी मुख्य बोलियाँ तिरहारी, जुड़ार, गहोरा आदि हैं। कालिका प्रसाद त्रिपाठी और हेमराज हंस बघेली लोक साहित्य के सुपरिचित हस्ताक्षर हैं।

इन्द्र बहादुर सिंह भदौरिया

यहु हमार जिउ जानत है

कइसे कइसे काम कीन है, यहु हमार जिउ जानत है।
दुस्मन का बदनाम कीन है, यहु हमार जिउ जानत है।
अनसन अउर पदरसन कीन्हा, हमहूँ भासन झाड़ेन है,
रेल का चक्का जाम कीन है, यहु हमार जिउ जानत है।
अंइचि घसोटे जउनै पावा, बड़े पिरेम से खावा है,
जनता का नाकाम कीन है, यहु हमार जिउ जानत है।
दुसरेन पर आरोप मढ़ेन है, किहिन नहिंन है काम कुछौ,
हमहूँ केतना काम कीन है, यहु हमार जिउ जानत है।
चोरी- हत्या- राजनीति सब कुछ करि डारा जीवन मा,
भृस्टाचार तमाम कीन है, यहु हमार जिउ जानत है।
लगा के गुण्डा सरेआम चौराहेन पर मरवायेन है,
मिले तुरत जयराम कीन है, यहु हमार जिउ जानत है।
अगर कहूँ पर कउनेव कारन, कउनो झटका खाय गयेन,
तुम्हरिउ नींद हराम कीन है, यहु हमार जिउ जानत है।

कालिका प्रसाद त्रिपाठी

खेत काटत कटी जिन्दगानी

लाल आँखी म छिउला के पानी ।
है पसीना से जूझति जमानी।
ओंठ पनबिरिया के रंग रँगना,
गोर हाँथे म बमुरी के कँगना।
खेत काटत कटी जिन्दगानी।
है पसीना से जूझति जमानी।
चमकै माथे म सूरुज के टिकुली,
है जोंधइया म चाँदी के हँसुली।
बेंदी दमकै तरइया निसानी।
है पसीना से जूझति जमानी।
रंग बदरी के काजर म झरिगा,
आँखी आँखी म सामन उतरि गा।
आँजै पुतरी म किस्सा कहानी ।
है पसीना से जूझति जमानी।
बाजै भिनसारे मूसर दोहरका,
लपकै अँधियारे काने के झरका।
गाबै जेतबा के सुर म दिबानी।
है पसीना से जूझति जमानी।

हेमराज हंस

वा खीसा मा डारे पउआ बइठ है

जब से मूड़े मा कउआ बइठ है।
अशगुन लये बऊआ बइठ है।
इंदिरा आवास कै किस्त मिली ही
वा खीसा मा डारे पउआ बइठ है।
पर साल चार थे दाना नहीं भा
औ सेंदुर रुपया लये नउआ बइठ है।
छै महिना से मजूरी नहीं मिली,
वा कखरी मा दाबे झउआ बइठ है।
उइ कहा थें देस भ्रष्टाचार मुक्त है,
कुर्सी मा जहां देखा तहां खउआ बइठ है।
गरीबी से बोलिआय का अंदाज अलग है
उई हंस का बताउथे भतखउआ बइठ है।

नये शब्द का जन्म

डॉ. चंद्र कुमार वरठे

दंतकथा को मारना उतना आसान नहीं होता,
जितना आदमी को,
लेकिन आदमी के दंतकथा बन जाने से पहले,
आदमी के दंतकथा बन जाने के बाद,
बहुत मुश्किल है आदमी को भी मारना।

'...और, फिर वह, इस तरह दंत कथा बन गया।' सुन रहा था वह। वह यानी 'शब्द'। शब्द यानी आवाजों के घेरों से छिटकी हुई, भटकी हुई और वक्त के गले में अटकी हुई 'आवाज'। एक ऐसी आवाज, जो थी तो घेरों में ही - लेकिन निकल आई थी बाहर, घेरों से...और इस तरह वह भी अपने अस्तित्व की तलाश में निकल पड़ी थी।

.....जैसे निकल पड़ते हैं लोग, सड़कों पर झुंड-के-झुंड, अपनों की आस में, सपनों की तलाश में। सर पोटली, और पोटली में सपने। कोई पराया नहीं। सारे ही अपने। सबकी ही दो आंखों में भरपूर गोलाई वाली रोटी के जुगाड़ की अकथ कहानी होती और आंखों की जुबान पानी-पानी, फिर भी किसी अनजानी-सी उम्मीद से बंधे थे वे सब लोग। सर पर सपनों की पोटली बांधे हेरने लगते हैं, टेरने लगते हैं, रोटी और उसके जुगाड़ की भरपूर तरकीबें। हाशिये पर बसे इन लोगों की सुबह होती रोटी और उसके जुगाड़ की चिंता में। और सांझ ढलती है, टूटे हुए सपनों के साथ! इन्हीं लोगों के साथ सड़कों पर 'वह' भी अपने अस्तित्व की तलाश में निकल पड़ी सड़कों पर मगर आज कुछ और ही बात थी भीड़ में। आदमी का चरित्र भीड़ के चरित्र से अलग थोड़े ही न होता है।

पूछा उसने - 'क्या हुआ, आज इतनी भीड़ क्यों है?'

भीड़ में से किसी ने कहा - 'लगता है, पहली बार बाहर आई हो इस तरह। ऐसी भीड़ तो रोज ही लगी रहती है यहां।'

'इस तरह?' उसने अपने आप से कहा, स्वगत कथन की भांति 'भीड़ का इस तरह लगना, लगते रहना किस बात का संकेत हो सकता है, क्या कोई बता सकता है?'

'उसे' लगा, 'वह' डूब गई, भीड़ में। कोई उसे सुन नहीं पा रहा है। या सुनना नहीं चाह रहा है। वह खड़ी हुई एक कोने में चुपचाप और उदास। और अपनी आंखों के कोरों पर ढलक आए दो बूंद आंसुओं को पोंछकर देखती रही सब कुछ, जो कुछ घटित हो रहा था।

यह बहुत पुरानी तो नहीं, लेकिन आजकल की भी कहानी नहीं -

तब की है यह बात,
जब थी घोर अंधियारी रात,
हाथ को सूझता न था हाथ
और आंखें सब कुछ देखने को आतुर
चिंतातुर चेतना पर पहरे लगाती
ऐसी जब भी आती है रात,
सब कुछ बदल जाता है
सूरज के उगने से पहले तय हो जाता है
सुबह के सूरज का भाग्य।
तब भी ऐसा ही हुआ था, हो रहा था,
ठीक उसकी आंखों के सामने,

और वह देख रही थी,
आवाजों के घेरे से छिटकी हुई, भटकी हुई
और वक्त के गले में अटकी हुई आवाज...।

वे सब-के-सब दौड़ रहे थे, चीखते हुए, चिल्लाते हुए, हांफते हुए, चीख-चीखकर, चिल्लाकर, उनके मुंह झाग से भर आए थे। फिर भी, वे एक ही स्वर में, एक ही आवाज में नारे लगा रहे थे। उनके नारे चीखों में कब तब्दील हो गए, उन्हें पता ही नहीं चला।

वे सारे-के-सारे चिल्ला रहे थे- 'पकड़ो पकड़ो, कहीं भागने न पाए.. पकड़ो, पकड़ लो उसे, कत्ल कर दो।' लेकिन 'वह' था कि सरपट भागता ही चला जा रहा था, जिधर भी रास्ता मिलता, जो भी गली मिलती, जो भी मोड़ दिखता। बीच में जो भी आता, सबसे टकराता, गिरता, पड़ता, भागता ही चला जा रहा था वह। लगातार, निरंतर, आगे, और आगे, उन सभी से, जो चिल्ला रहे थे। 'वे' चीख रहे थे, चिल्ला रहे थे... पकड़ो पकड़ो उसे 'वह' बहुत खतरनाक है, उसका जिंदा रहना हम सबके लिए बहुत बड़ा खतरा है। वह हम सबकी नकाब उतार सकता है। जब हमारी नकाब ही उतर जाएगी, तब हम कहां बच पाएंगे? पलस्तर उखड़ी हुई दीवार की तरह। दुनिया हमारे असली चेहरे देखकर थूकेगी, हम पर पत्थर मारेगी, लहूलुहान कर देगी। इसलिए दौड़ो, तेज, और तेज, भागो, पकड़ो उसे, कत्ल कर दो, वह बचने न पाए, वह बहुत खतरनाक है, वह सोये हुओं को जगा सकता है, वह 'क्रांति' ला सकता है।

और फिर एक दिन सांझ ढले 'उसे' पकड़ा गया वह, हाशिये पर बसे लोगों की बस्ती में। भक धुंआ उगलती मशालों की मस्ती में। और, पीलियाग्रस्त रोशनी वाली बस्ती में, नन्हे-मुन्ने को क्रांति का पहला सबक सिखा था। तभी 'वे' सब पहुंच गए वहां, क्योंकि वे जानते थे, 'वह' अगर कभी भी मिला, या फिर कहीं मिल सकेगा तो वह इन्हीं बस्तियों में। उन सबका अंदाज सही निकला। वह वही था बस्ती में। सभी ने उसे घेर लिया। घेर कर पकड़ लिया और कानून में जगड़ लिया।

उन सभी के हाथों में थे तरह-तरह के शस्त्र और अस्त्र, अपने-अपने विचारों और विश्वासों

के। उनके 'दर्शन' और 'आदर्शों' के। कोई त्रिशूल लेकर आया था तो कोई सलीबनुमा अस्त्र, किसी-किसी ने भाला, बरछी, कुल्हाड़ी पकड़ी थी तो कोई गेरुए रंग को धारे था। तो, कोई हरियाले को, कोई नीला, तो कोई पीला, तो कोई लाल। किसी-किसी ने सफेद कपड़े को ही अपनी ध्वजा बना लिया था। किसी-किसी ने अर्द्धचंद्राकार अस्त्र थाम रखा था। सभी अपनी-अपनी पसंद के रंगों के ध्वज लेकर आए थे।

'वह' उन सबके बीच घिरा हुआ था। चुपचाप खड़ा था। उसे लगा, आज वह 'उन' सभी से बड़ा था। मुर्दों को मरने का डर। उसे हंसी आई सोचकर, जब वे सभी सोच रहे थे, उसे कैसे मारा जाए। कैसे खत्म करें। इस बात पर उन सभी में बहुत देर तक बहसें भी होती रहीं। वह अपनी मृत्यु की पूर्व तैयारी देखकर मुस्कुराता रहा। और जब, किसी की कोई एक राय नहीं बन सकी, तब, उन्होंने बस्ती को ही लगा दी आग। और उसे आग में झोंककर चले गए। जिधर से आए थे, उधर, अपने-अपने रास्ते पर।

उसे आग में झोंककर वे हंसे, सब-के-सब हंसते रहे, हंसते रहे, लगातार। वे सब-के-सब बहुत प्रसन्न थे। वह बस्ती की आग में झुलसता रहा, जलता रहा, और वे अपनी कामयाबी पर जश्न मनाने लगे, मनाते रहे, तब तक, जब तक कि, वे बेहोश होकर गिर न पड़े।

उसकी चिता जल रही थी।

उसकी चिता की रोशनी में शहर की गलियों में इकट्ठा होने लगी भीड़, मगर सबके चेहरे आशंकाग्रस्त। मौत से पहले की मुर्दनी छाई हो जैसे। कान जैसे आंखें बन गए थे, देखने को आतुर, कुछ भी, प्रिय या अप्रिय। और आंखें, कान बन गई थीं, अघटित की आशंका में। सुनने के लिए उतावले, कुछ भी।

कान, जब आंखें बन जाते हैं, कुछ भी शेष नहीं रह जाता है देखने के लिए। और आंखों के कान बन जाने पर सुनने के लिए।

तभी 'अजान' की तरह किसी अनजान दिशा से आकाशवाणी की विविध भारती की स्वर लहरियां हवा में तैरती हुई आईं - 'हम तुम जुग-जुग से ये गीत मिलन के गाते रहे हैं...गाते रहेंगे।'

भीड़ ने सुर के साथ मिलाया सुर - और ताल के साथ बेताल होकर वे सब चिल्लाए -
फावड़ा, कुल्हाड़ी, हथौड़ा, छैनी....
पत्थर, सब्बल, भाला, बरछी...

और, जिसके, जो हाथ लगा, उठाकर नाचने लगा। पता नहीं क्यों, उनकी चीखें और नृत्य देखकर मुझे आदिम युग के जंगली आदमी के नृत्य की याद आई, जिसमें उन्होंने पहली बार संगीत की खोज की होगी।

यह सबकुछ जो घटित हुआ, एकदम अघटित की तरह। मैं निर्निमेष देखता ही रहा, और वे सभी चले गए हंसते हुए, जिधर से आए थे उधर।

उसकी कटी-फटी लाश के टुकड़े, इधर-उधर बिखरे पड़े थे। मैंने तमाम टुकड़े इकट्ठे किए, उठाए, कंधे पर रखे और निकल पड़ा बेताल के प्रश्नों के उत्तर खोजने। कंधे पर लाश... और भी भी एक तलाश... ले गई मुझे गली-दर-गली, कली-दर-कली, गेंदा और गुलाब, चंपा और चमेली, सभी से पूछता, घूमता रहा - 'नाम शब्द का होता है अथवा नाम का भी होता है कोई शब्द?' अट्टहास करता हुआ शब्द का भूत अचानक ही बोल पड़ा - 'भूल करना शब्दों का आचरण नहीं होता। शब्द चलते हैं आदमी की सोच, समझ और नैतिकता के तय किए कर्तव्यों की पगडंडी पर।'

प्रश्नचिह्न - जो इस प्रक्रिया को आरंभ से देख रहा था, मुस्कुरा कर बोल पड़ा- 'कैसी बातें करते हो जॉनी, शब्द और मनुष्य की होती है हमेशा एक कहानी।' फिर रुककर बोला - 'प्रश्न करना स्वभाव है मेरा, उत्तर की अभिलाषा मैं करता नहीं हूं, क्योंकि जब भी प्रश्न को मिला है उत्तर, मृत्यु हुई है प्रश्न की। जिस प्रश्न से पैदा होता है उत्तर, वही हंसता है उसकी मृत्यु पर। उत्तर हमेशा पितृघाती होते हैं। इसलिए मैं चाहता हूं, हमेशा अनुत्तरित ही रहूं। सुन रहे हो ना?' प्रश्न एक बार फिर रुका। माथे पर आई पसीने की दो-चार बूंदे कंधे पर पड़े 'लाल' वस्त्र से पोंछ डालीं और, फिर दीर्घ श्वांस लेकर उसांसते हुए बोला- 'लेकिन, ऐसा मत समझना कि एक बार मर जाने के बाद पैदा ही नहीं होता मैं। दरअसल, मृत्युंजयी हूं मैं। मुझे कभी मृत्यु नहीं आती। निरंतर जन्म लेता हूं मैं, नये-नये रूप धारण करता हूं। मैं ऐसा क्यों हूं, सुनना चाहोगे मेरी कहानी? सुनो-' और वह कहने लगा -

वह अमावस की काली रात थी। कई दिनो, महीनों और वर्षों के बाद वह रात आई थी। जब आदमी का बंटवारा किया जाना था।

मैं आदमी को अलग-अलग हिस्सों में कटते और बंटते हुए देख रहा था...टुकड़ा-टुकड़ा आदमी, अपनी विजय पर प्रसन्न था.....। कोई अपने हाथों में अपना ही कटा हुआ सर लेकर चला जा रहा था, तो कोई अपने दोनो कटे हुए हाथों में तीर, कमान और तलवार थामे खुश था। संपूर्ण मनुष्य को टुकड़ों में बांटने वाले उस षड्यंत का मैं चश्मदीद गवाह था।

....किसी के पेट को काटकर भीतर की सारी अंतड़ियां निकाल कर चील-कौवों को खिला दी गईं और पेट का खाली गड्ढा थमाकर उस आदमी को अलग कर दिया गया। किसी के दोनो पैर काटकर उसी के हाथ में थमा दिए और कहा- आज से तुम अपने पैरों पर नहीं चलोगो। वह अपनी दोनों आंखों से यह दर्दनाक दृश्य देख रहा था और सोच रहा था... क्योंकि, इस आदमी के पास था सर। हाथ और पेट नहीं थे तो केवल पैर। वह एक ऐसी साजिश थी, जिसका मैं चश्मदीद गवाह भी था और शिकार भी। क्योंकि इस साजिश के बाद आने वाली तमाम पीढ़ियों की प्रश्नभरी निगाहों का सामना मुझे ही करना था, लेकिन कर भी क्या सकता था मैं। एक ऐसी षड्यंत्र भरी सांस्कृतिक साजिश का शिकार हो रहा था मैं, अघटित की कल्पना से भी सिहर उठता।

वह रुका। इधर-उधर देखा। जैसे आंखों को टटोलकर परख रहा हो परिवेश को। और फिर दूर किसी अज्ञात दिशा की ओर देखते हुए बोलने लगा -

'और फिर वह रात भी आई, जब चारों ओर आग ही आग लगी थी। आग का विशाल दरिया हो जैसे, कहीं कोई ओर, न छोर। समुद्र में उठती सुनामी लहरों की भांति पर्वताकार लपटें जल रही थीं और अट्टहास करतीं सब कुछ जलाकर खाक कर देना चाहती हों जैसे।

और इन लपटों से घिरा हुआ था, चीखता रहा मैं, चिल्लाता रहा मगर सिवाय एक अर्थहीन शोर के सबकुछ अनसुना था।

धीरे-धीरे ठंडी पड़ने लगी आग,
लपटों का विकराल और विशाल तांडव
धीरे-धीरे कम होने लगा,
जैसे किसी ने डाल दिया हो पानी।
फिर धीरे-धीरे उसमें से उठने लगा
नीला धुंआ, जहरीला, नीला धुंआ पसरने लगा
फैलने लगा शहर में
गली, मुहल्लों, खेतों, खलिहानों,
स्कूल-कॉलेजों, विश्वविद्यालयों, पार्कों में
और फैलने लगी उसकी गंध
थानो में, जेल के सींखचों के पीछे,
उसकी गंध फैलने लगी
फाइव स्टॉर होटलों और बारों में
विदेशी किस्म की महंगी से महंगी ह्विस्की,
बीयर की बोतलों से होती हुई
मकानों, दुकानों और तवायफों के कोठों तक....
जलने लगे बदन
मजबूत और अड़ियल हाथों के पंजों में
दबोचे, कसमसाते ताजे, जवान
और गदबदे जिस्मों से उठने लगा....
नीला धुंआ,
उसकी गंध से नथुने फड़फड़ाने लगे
बिल्ली के पंजों में दबी मुगार्बी की तरह
और, यह दौर दुःस्वप्न की भांति खत्म होता.....

इसके पहले ही अट्टहास सुनाई पड़ा। धार्मिक प्रतीकों पर सवारी करता स्वप्न आया था... बोला- 'मूर्खों! सपनों का अनुवाद नहीं हो सकता किसी भी भाषा में। क्योंकि सपनों की कोई भाषा नहीं होती।'

फिर पलभर रुककर बोला - 'सपनों का मानव बम बनने से पहले ही, सपने को फ्यूज कर देना चाहिए!'

तभी अचानक 'शब्द' ने गर्दन उठाई. कुंकड़ूं करते मुर्गे की भांति। उठा। खड़ा हुआ। चला। दौड़ा। भागा और सड़कों के मेनहोलों के ढक्कन खोल-खोलकर तलाशने लगा अपनी ही लाश के बिखरे टुकड़ों को मगर कहीं कुछ नहीं मिला। खिलखिला उठा शब्द हंसता रहा.... अंधियारी रातों में, खंदकों, पहाड़ी गुफाओं में छिपे, छापामार इरादों को लेकर। हाथों में संगीनें थामे। और युद्ध की विभीषिका को अपनी आंखों से देखते हुए, नन्हे बच्चे की भांति लार टपकाते हुए।

शब्द हंसा और अपनी तोतली जुबान से उपदेशक की मुद्रा में बोलने लगा -

'अमर है हमारी आस्था
अमर विश्वास है हमारा
शब्द कभी मरते नहीं,
कब्र नहीं होती जिंदगी भी।
...और फिर एक बार
नया शब्द जन्म ले चुका था,
जन्म हो गया था नये शब्द का।'

मैनेजर पांडेय और महेश कटारे सुगम को दिल्ली हिंदी अकादमी का सम्मान

हिंदी के वरिष्ठ आलोचक मैनेजर पांडेय एवं बुंदेलखंड (म.प्र.) के कवि महेश कटारे सुगम को दिल्ली सरकार की हिन्दी अकादमी द्वारा इस वर्ष का शलाका सम्मान दिया जाएगा। हिन्दी अकादमी ने वर्ष 2016-17 के सम्मानों की घोषणा करते हुए इसमें मैनेजर पांडेय को सर्वोच्च शलाका सम्मान के लिए चुना है। गोपालगंज (बिहार) में 23 सितंबर 1941 में जन्मे मैनेजर पांडेय ने हिंदी आलोचना के क्षेत्र में अप्रतिम योगदान दिया है। शब्द और कर्म, साहित्य और इतिहास दृष्टि, साहित्य के समाजशास्त्र की भूमिका, भक्ति आंदोलन और सूरदास का काव्य, अनभै सांचा, आलोचना की सामाजिकता, संकट के बावजूद जैसी उनकी रचनाओं ने हिन्दी आलोचना को अलग मुकाम दिया है। उन्हें अब तक दिनकर राष्ट्रीय सस्मान, गोकुलचंद आलोचना पुरस्कार, सुब्रहमण्यम भारती पुरस्कार और साहित्य सम्मान मिल चुका है।

दिल्ली हिंदी अकादमी ने विशिष्ट सृजनात्मक योगदान के लिए नूर जहीर को चुना है। इसी प्रकार, हिन्दी सहभाषा सम्मान (बुंदेलखंडी) महेश कटारे सुगम को, संतोष कोली स्मृति सम्मान जगमति सांगवान को, हिन्दी अकादमी विशिष्ट योगदान सम्मान जयप्रकाश कर्दम को, हिन्दी अकादमी काव्य सम्मान सविता सिंह को, हिन्दी अकादमी गद्य विद्या सम्मान रमेश उपाध्याय को, ज्ञान-प्रौद्योगिकी सम्मान राजेश जैन को, बाल साहित्य सम्मान डॉ. प्रभाकिरण जैन को, नाटक सम्मान रामगोपाल बजाज को, हास्य व्यंग्य सम्मान सहीराम को, अनुवाद सम्मान डॉ. राजेन्द्र प्रसाद मिश्र को, इलेक्ट्रानिक मीडिया पत्रकारिता सम्मान नवीन कुमार को, प्रिंट मीडिया पत्रकारिता सम्मान मधुसूदन आनन्द को, हिन्दी सेवा सम्मान डॉ. जानकी प्रसाद शर्मा को दिया जाएगा।

शलाका सम्मान के लिए चुने जाने पर वरिष्ठ आलोचक मैनेजर पांडेय कहते हैं कि साहित्य का समाज और पाठकों से जुड़ाव सबसे ज्यादा जरूरी है। अगर साहित्य अपने पाठक से दूर होता जाएगा तो फिर उसकी अर्थवत्ता कुछ भी नहीं रहेगी। ऐसे ही आलोचना के केन्द्र में भी समाज को रखा जाना चाहिए। पुस्तक मेले व अन्य जगहों पर आज भी सबसे ज्यादा प्रेमचंद को खरीदा और पढ़ा जा रहा है। इससे यही पता चलता है कि प्रेमचंद की प्रासंगिकता समाज में आज भी बनी हुई है।

वर्ष 2017 के "जनकवि नागार्जुन आलोक सम्मान" के लिए भी बुंदेली कवि महेश कटारे सुगम का नाम तय किया गया है। कटारे की कलम लंबे वक्त से शोषितों एवं वंचितों की आवाज बनी हुई है। महेश कटारे सुगम अपनी बुंदेलखंडी लोक भाषा में प्रखर और प्रतिबद्ध प्रगतिशील जनवादी गजलों के लेखन के लिए जाने जाते हैं। मूलतः बीना (मध्य प्रदेश) के निवासी सुगम की गजलें बिम्ब और प्रतीक विधान में भी टटकी और मौलिक होती हैं। उनके पास जनभाषा का सम्पूर्ण सौंदर्य शास्त्र है और शब्दों में भरपूर आंचलिक सुगंध भी। उनकी गजलें हमारे ग्रामीण भारत का सच्चा रोजनामचा जैसी होती हैं।

'कविकुंभ' परिवार की ओर से मैनेजर पांडेय एवं महेश कटारे सुगम को हार्दिक बधाई।

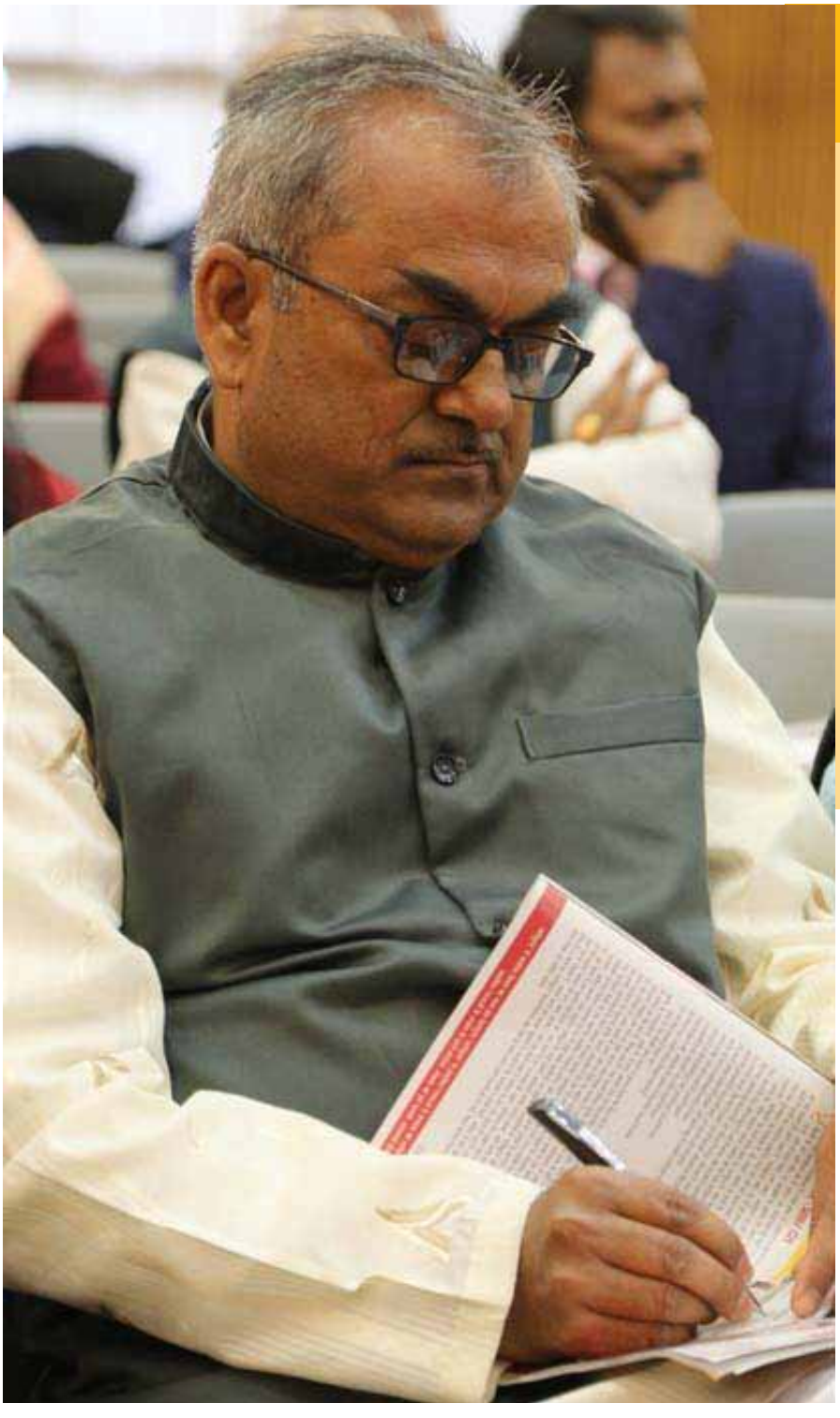

डॉ. राम गरीब 'विकल' से कवयित्री कल्पना मनोरमा की विशेष बातचीत

बचपन से गरीबी और भूख को मैंने बार-बार भोगा है

डॉ. राम गरीब 'विकल' दशकों से हिन्दी कविता की विविध विधाओं में रचनारत हैं। वह कहते हैं, आज वातानुकूलित कमरों में बैठकर जिस गरीबी, भूख, विपन्नता का चित्रण प्रायः किया जाता है, मैंने उसे बहुत नजदीक से भोगा है। भूख कैसी होती है, मैंने बचपन से ही उसे बार-बार महसूस किया है।

प्रश्न – आज के युग में कविता अपनी असली भाव-भंगिमा तलाशती सी नजर आती है। इस पर आपके क्या विचार हैं?

डॉ. 'विकल' - मुझे आचार्य रामचन्द्र शुक्ल का

कथन याद आ रहा है कि जिस प्रकार आत्मा की मुक्तावस्था ज्ञानदशा कहलाती है, उसी प्रकार हृदय की मुक्तावस्था रसदशा कहलाती है। सीधा सा अर्थ है कि बिना किसी छल-प्रपंच के हृदय की या मानव मन की सहज वृत्तियों के निर्वाध प्रवाहित होने में ही कविता का सामीप्य पाया जा सकता है। काव्यशास्त्र के सिद्धान्तों पर दृष्टिपात करने पर भी काव्य के चार मूल तत्वों - भाव, बुद्धि, कल्पना और शैली तत्व में भी भाव तत्व को सबसे पहले स्थान दिया गया है। अब इसे विडम्बना ही कहेंगे कि आज कुछ अति बौद्धिक लोगों ने कविता की दिशा और दशा बदलने का बीड़ा उठा रखा है। जब कविता में बुद्धि पक्ष प्रधान हो जाएगा, उसके मूल स्वरूप में, उसकी भाव-भंगिमा में अन्तर आना या विचलन स्वाभाविक है। यह चिन्ता का विषय है। तथाकथित बौद्धिकों ने कविता को छन्द, लय, भाव, रस, सबसे मुक्त करने का अभियान छेड़ रखा है। जब भाव नहीं होगा, रस नहीं होगा, तो कविता कहाँ होगी? आज के काव्य मंचों ने भी कविता को आहत करने में कोई कोर-कसर नहीं छोड़ी है। कविता को काव्य संध्या, विराट कवि सम्मेलन, अखिल भारतीय कवि सम्मेलन से निकाल बाहर कर आज हमने काव्य मंचों को अखिल भारतीय हास्य कवि सम्मेलन का रूप दे दिया है। सोचना पड़ता है कि शेष आठ रस कहाँ आसरा पायेंगे? बुकस्टाल्स पर मिलने वाले किताबी चुटकुले स्तरीय काव्य मंचों की खिल्ली उड़ाते दिखते हैं।

प्रश्न - रचनाधर्मिता के लिए इतिहास-समाज का ज्ञान होना कितना आवश्यक है?

डॉ. 'विकल' - इस प्रश्न का उत्तर देने के पूर्व मैं लेखन के उद्देश्य को स्पष्ट करना चाहूँगा। मेरे विचार से अतीत की पृष्ठभूमि पर वर्तमान संसाधनों का उपयोग करते हुए भविष्य के लिए राजपथ का निर्माण करना ही लेखन का उद्देश्य होता है। हमारा इतिहास, हमारी सांस्कृतिक-सामाजिक पृष्ठभूमि हमें बहुत कुछ सीखने को देते है, जिसमें कुछ अनुकरणीय होता है तो कुछ को समयानुसार परिवर्तन की आवश्यकता होती है। इस दृष्टि से हमारा इतिहास, समाज, राजनीति, दर्शन, अध्यात्म, मनोविज्ञान आदि अनेकानेक विषयों का गहन अध्ययन होना आवश्यक है। हमारे अन्दर एक विश्लेषणात्मक दृष्टि का होना भी अनिवार्य है। यही दृष्टि हमारे अन्दर ग्राह्य और त्याज्य विवेक का संचार करती है। यही विश्लेषणात्मक दृष्टि न केवल हमारे वर्तमान सृजन का आधार बनती है अपितु भविष्य के लिए हममें एक दूरगामी चिन्तन दृष्टि का विकास भी करती है।

प्रश्न - महाकवि रामधारी सिंह ह्यदिनकर' की कृति ह्यकविता और शुद्ध कविता' किसका पर्याय लगती है?

डॉ. 'विकल' - समग्र जीवन का। दिनकर जी की यह कृति मात्र एक निबन्ध संग्रह ही नहीं है बल्कि इसके विभिन्न अध्याय एक ही विषय के क्रमिक विस्तार प्रतीत होते हैं। दिनकर जी की उक्त कृति के प्रकाश में विचार करें, तो कविता की चर्चा केवल कविता की चर्चा नहीं हो सकती, उसमें समूचा मानव जीवन समाहित होता है। जीवन का प्रत्येक क्रिया व्यापार समाहित होता है। कविता लोक के राग, विराग और संघर्ष का समुच्चय कही जा सकती है। तदनुसार इस समुच्चय की पड़ताल किये बिना कविता को भी नहीं समझा जा सकता।

प्रश्न - संस्कृति के जनपथ पर चलते हुए रचनाकर्म और जीवन में आप तालमेल कैसे करते हैं?

डॉ. 'विकल' - आम धारणा है कि जो लेखन कर रहा है, वह अकादमिक क्षेत्र से ही जुड़ा होगा। सबसे पहली जटिलता कहें या विसंगति, यहीं से शुरू होती है। हिन्दी साहित्य रचना के संवेदनशील क्षेत्र का विद्यार्थी हूँ और आजीविका के लिए नितान्त संवेदनाहीन या तकनीकी विभाग (बीएसएनएल) में वह भी लेखा अधिकारी पद पर नौकरी कर रहा हूँ। यह दोनों काम उत्तरी और दक्षिणी ध्रुवों को एक साथ साधने जैसे हो जाते हैं। फिर भी साहित्य प्रेम अन्तरात्मा में प्राणतत्व के रूप में बसा है। उसे छोड़ नहीं सकता।

प्रश्न - आपकी रचनाओं में गीत, गजल, छन्दमुक्त आदि विधाओं में बड़ी छटपटाहट है। आप उसे कैसे सहजता से कह जाते हैं?

डॉ. 'विकल' - हर दृष्टि से पिछड़े जिले के एक गाँव के गरीब ब्राह्मण परिवार में सन् 1960 में मेरा जन्म हुआ था। जैसा कि मेरे पूर्वजों ने बताया, देश 1960 भीषण अकाल से जूझ रहा था। एक तो वैसे ही हालत खराब थी, उस पर भी अकाल का तड़का। वातानुकूलित कमरों में बैठकर जिस गरीबी, भूख, विपन्नता या अन्यान्य तरह की पीड़ा का चित्रण हमारे वर्तमान साहित्य में प्रायः देखा जाता है, मैंने उन्हें बहुत नजदीक से न केवल देखा है वरन भोगा भी है। भूख कैसी होती है, मैंने बचपन से ही इसे अनेक बार अनुभव किया है। स्कूल की पढ़ाई के दिनों में जब किताबें खरीदने के लिए पैसे नहीं होते थे और मेरे पितामह, वह कक्षा उत्तीर्ण कर चुके विद्यार्थियों से मेरे पढ़ने के लिए पुरानी किताबें माँगकर ले आते थे, तब मुझे अभाव समझ में आने लगा था। कितना-कितना गिनाया जाए। यह एक महागाथा है। इसीलिए मेरी कविताओं में यह पक्ष जब आता है तो मुझे कल्पना करने की जरूरत नहीं पड़ती। मेरा बचपन, मेरा गाँव मेरे सामने आकर खड़े हो जाते हैं। वह अपनी कहानी कहने के लिए पीड़ा और भाव ही नहीं शब्द भी लेकर आते हैं। मैं निमित्त मात्र होता हूँ। असल रचना तो उन अनुभवों से छन कर आती है।

प्रश्न - क्या कवि हमारे जन्म के साथ जन्म लेता है या समयानुसार उसका प्रादुर्भाव होता है?

डॉ. 'विकल' - मुझे ऐसा प्रतीत होता है कि जन्म से ही कुछ लोगों को आन्तरिक स्वभाववश कुछ ऐसे गुण प्राप्त होते हैं, जो उन्हें संवेदनशील बनाते हैं। रही कवि होने की बात तो यह उसी संवेदना की अभिव्यक्ति है। यदि मनुष्य के अन्दर संवेदनशील हृदय ही नहीं हो तो उसे पढ़ाई, डिग्री, वातावरण या समय आदि का प्रभाव काव्य प्रेमी तो बना सकता है, कवि नहीं। हाँ इतना जरूर है कि यदि काव्य प्रतिभा सम्पन्न व्यक्ति को समुचित वातावरण और प्रोत्साहन मिले तो उसके विकास की गति को जरूर प्रभावित किया जा सकता है।

दो निवाले तो जाने दे अंदर हम भी हिन्दोस्तान बोलेंगे

पटना। यहां पिछले दिनो 'गूलर के फूल नहीं खिलते', 'लेकिन उदास है पृथ्वी', नीम रोशनी में', 'कुरुज' और 'दूर तक चुप्पी' जैसे महत्वपूर्ण कविता-संग्रहों के कवि मदन कश्यप की कविताओं का पाठ 'टेक्नो हैराल्ड' के सभागार में हुआ। 'पटना प्रगतिशील लेखक संघ' के तत्वावधान में आयोजित इस महत्वपूर्ण कविता-आयोजन के मुख्य अतिथि दिल्ली से पधारे प्रसिद्ध कवि गंगेश गुँजन थे, अतिथि दिल्ली से पधारे कवि-आलोचक देवशंकर नवीन थे। अध्यक्षता समकालीन कविता के महत्वपूर्ण कवि प्रभात सरसिज ने की। कार्यक्रम का संचालन कवि राजकिशोर राजन किया और धन्यवाद ज्ञापन कवि शहंशाह आलम ने किया।

पहले सत्र मदन कश्यप की चुनिंदा कविताओं का पाठ और इनकी कविताओं पर टिप्पणी का रहा। दूसरे सत्र में पटना और आसपास के कवियों की कविताओं का पाठ हुआ। इस अवसर पर मदन कश्यप ने अपनी 'भारत माता की जै', 'डपोरशंख', 'छोटे-छोटे ईश्वर', 'पुरखों का दुःख', 'अभी भी बचे हैं', 'उम्मीद', 'बहुरूपिया', 'काल-यात्री' और 'बिजूका' शीर्षक आदि कविताओं का पाठ किया। कविता-पाठ से पहले मदन कश्यप ने समकालीन कविता पर कहा कि समय इतना बुरा आ गया है कि हम एक त्रासदी से निकलते हैं, तो कोई दूसरी त्रासदी हमें आकर घेर लेती है। सच यही है कि कविता हमें त्रासदी से बाहर निकालती है। मदन कश्यप की कविताओं के बाद गंगेश गुंजन, प्रभात सरसिज, अशोक, शेखर, देवशंकर नवीन आदि महत्वपूर्ण कवियों-कथाकारों ने उनकी कविताओं पर अपने विचारों को प्रकट किया।

इसके बाद कविता का दूसरा सत्र चला। इस सत्र का आरंभ युवा गजलकार रामनाथ 'शोधार्थी' के गजल-पाठ से हुआ। उनका एक शे'र था : बेचारगी तुम्हारी मियाँ दो दिनों की है, जो बोलकर गए थे, वो घर पर नहीं मिले। गजलकार समीर परिमल इन दिनों हिंदी गजल को एक नया रास्ता दिखा रहे हैं। उन्होंने अपनी गजल सुनाते कहा : दो निवाल तो जाने दे अंदर, हम भी हिन्दोस्तान बोलेंगे। वहीं कवि घनश्याम ने सुनाया : क्षितिज की गोद में बैठा भकाभक लाल है सूरज, अँधेरे के लिए जैसे कोई भूचाल है सूरज।

शिवशरण जी कहाँ पीछे रहने वाले थे। उन्होंने 'कैसी है, ये हवा / अभी गिरा एक पत्ता' सुनाकर खूब वाहवाही लूटी। हेमंत दास 'हिम' ने अपनी कविता में कुछ इस तरह से नया रंग घोला : बहार वहाँ नहीं आती / इसलिए उसका जाना भी / उसे मधुमय-सा लगता है। भागवत 'अनिमेष' ने अपनी कविता के माध्यम से बेटियों को बल और संबल देते हुए सुनाया : धान रोपती बेटियाँ / सुंदरियाँ स्लेटियाँ / हर इक अपने मन की रानी / नहीं किसी की चेटियाँ। शायर और कवि संजय कुमार कुंदन ने 'कैट वॉक' उनवान की अपनी नज्म सुनाई : ये देखें रैंप पर ये कैट वॉक / कि जिसमें मुल्क के हर गोशे से / आएँ नुमाइंदे / हाथों में असलहे लेकर।

कवि राजकिशोर राजन ने कविता के रहस्य को हटाते हुए सुनाया : दूब को देखा मैंने गौर से / और हथेलियों से सहलाता रहा / दूब तो दूब ठहरी / लगी थी पृथ्वी को हरा करने में निः शब्द। कवि शहंशाह आलम ने हमारे संघर्ष और विरोध को संभालते हुए सुनाया : सत्ताधीश के भेदिए को यह मालूम है / कि मुझे कुछ भी चुराने का मौका मिलेगा / तो सबसे पहले आग को चुराऊँगा। वरिष्ठ कवि प्रभात सरसिज की कविताएँ इंसानी जिन्दगी के एकदम करीब होती हैं। इंसानी जिन्दगी में जो लोग असन्तोष पैदा करते हैं, वे उनके खिलाफ खड़े दिखाई देते हैं। उन्होंने अपनी कविता के माध्यम से अपने इन्हीं ख़्याल को रखा : अपनी उत्पत्ति के केंद्र सर ही / अपनी कीर्त्ति लेकर आए हैं लोक संहारक / अब अपनी यशःकीर्त्ति के गुण स्वयं गा रहे हैं। डा. बी एन विश्वकर्मा, कुंदन आनंद, प्रभात कुमार धवन, संजीव कुमार श्रीवास्तव आदि ने भी अपनी-अपनी कविताओं का पाठ किया।

बिहार में 30 साहित्यकारों का सम्मान

पटना। बिहार की राजधानी पटना के फणीश्वर नाथ रेणु हिन्दी भवन में पिछले दिनो मंत्रिमंडल सचिवालय के राजभाषा (हिन्दी) निदेशालय द्वारा दो दिवसीय राजभाषा हिन्दी साहित्य समागम का आयोजन किया गया, जिसका उद्घाटन शिक्षा मंत्री डॉ. अशोक चौधरी ने किया। इस मौके पर वर्ष 2014-15 और 2016-17 के लिए क्रमशः 13 और 17 साहित्यकारों को राजभाषा सम्मान एवं पुरस्कारों से नवाजा गया। शिक्षा मंत्री के साथ-साथ विधान पार्षद व साहित्यकार रामवचन राय, चयन समिति के अध्यक्ष केदारनाथ सिंह एवं हिन्दी प्रगति समिति के अध्यक्ष सत्यनारायण ने राजभाषा पुरस्कार प्रदान किए।

सम्मानित साहित्यकारों में प्रतिष्ठित 'डॉ. राजेन्द्र प्रसाद शिखर सम्मान' रामनिरंजन परिमलेन्दु व खगेन्द्र ठाकुर को दिया गया। सुरेन्द्र स्निग्ध व चन्द्रकिशोर जायसवाल को 'जननायक कपूर्री ठाकुर सम्मान', आलोक धन्वा, मदन कश्यप को 'नागार्जुन पुरस्कार' से समादृत किया गया। स्व. तुलसी राम, योगेन्द्र प्रसाद व रामरक्षा दास को

'बाबा साहेब भीम राव अम्बेडकर पुरस्कार', नंदकिशोर नंदन व रामधारी सिंह दिवाकर को 'बीपी मंडल पुरस्कार', बृजनंदन किशोर, रवीन्द्र भारती, कुमार नयन को 'राष्ट्रकवि दिनकर पुरस्कार' एवं सुरेश कांटक, अनंत कुमार सिंह को 'फणीश्वरनाथ रेणु पुरस्कार' से नवाजा गया।

सम्मानित होने वाले अन्य साहित्यकार हैं झ रश्मि वर्मा, सविता सिंह ('महादेवी वर्मा पुरस्कार', गंगेश गुंजन, देवशंकर नवीन ('विद्यापति पुरस्कार'), अशोक कुमार सिन्हा, उदय शंकर शर्मा ('मोहनलाल महतो वियोगी पुरस्कार'), अक्षयवर दीक्षित ('भिखारी ठाकुर पुरस्कार'), जाबिर हुसैन, ए अरविंदाक्षण ('बाबू गंगाशरण सिंह पुरस्कार'), आरएस सरार्जू, राजेन्द्र प्रसाद सिंह ('ग्रियर्सन पुरस्कार') और डीएन गौतम ('डॉ. फादर कामिल बुल्के पुरस्कार')। इनके अतिरिक्त राष्ट्रभाषा प्रचार समिति, वर्धा व दक्षिण भारत हिन्दी प्रचार सभा को 'विद्याकर कवि पुरस्कार' से सम्मानित किया गया।

गौरतलब है कि डॉ. राजेन्द्र प्रसाद शिखर सम्मान की राशि तीन लाख रुपए, बाबा साहेब भीम राव अंबेडकर पुरस्कार की ढाई लाख रुपए, जननायक कपूर्री ठाकुर पुरस्कार, बीपी मंडल पुरस्कार, नागार्जुन पुरस्कार, राष्ट्रकवि दिनकर पुरस्कार और फणीश्वरनाथ रेणु पुरस्कार की दो-दो लाख रुपए तथा शेष सभी पुरस्कारों की पचास-पचास हजार रुपए है।

सरस कवि-गोष्ठी एवं साहित्य कुंज का पुनर्गठन

औरंगाबाद, (बिहार)। जिले की 27 साल पुरानी साहित्य, कला एवं संस्कृति की संवाहक संस्था 'साहित्य कुंज' द्वारा पिछले दिनो स्थानीय अधिवक्ता भवन में कवि गोष्ठी आयोजित की गयी, जिसकी अध्यक्षता संस्था के अध्यक्ष देववंश सिंह ने की। युवा हास्य व्यंग्य कवि एवं ''साहित्य कुंज'' के महासचिव अरविन्द अकेला के कुशल संचालन में आयोजित गोष्ठी की शुरूआत करते हुये वरीय कवि जनार्दन मिश्र ''जलज'' ने मन की व्यथा गुनगुनाई। एक तरफ वरिष्ठ कवि हर्षदेव प्रेमी एवं राम किशोर सिंह की कविता में देशभक्ति की बयार बही तो युवा कवि अनुज बेचैन ने लोंगों को श्रृंगार रस की कविता सुनाई। युवा कवि घनंजय जयपुरी ने अपनी मगही कविता की इन पंक्तियों-'' पापा कही देख ताक के हमर करा दा शादी'' सुनाकर लोगों को हँसाया तो युवा कवि अरविन्द अकेला ने प्रेम गीत गुनगुनाया। इनके अलावा युवा शायर अब तालिब, नवोदित कवि निभय कुमार मिश्रने भी कविता पाठ

किए।

गोष्ठी से पहले 'साहित्य कुंज' का पुनर्गठन किया गया, जिसमें देववंश सिंह अध्यक्ष, राम किशोर सिंह, अरुण औरंगाबादी, शब्बीर हसन शब्बीर, हर्षदेव प्रेमी एवं रमन सिन्हा उपाध्यक्ष, अरविन्द अकेला महासचिव, प्रियदर्शी किशोर श्रीवास्तव सचिव, श्रीराम राय संगठन सचिव, प्रो. सिद्धेश्वर प्रसाद सिंह संयोजक, गोदावरी कुमारी कोषाध्यक्ष, उदय कुमार सिंह, जगन्नाथ सिंह, प्रो.तारकेश्वर प्रसाद सिंह, सारंगधर सिंह, प्रो.टी. एन.सिन्हा, सुरेन्द्र कुमार मिश्र, सिद्धेश्वर विद्यार्थी संरक्षक, जिलाधिकारी, आरक्षी अधीक्षक, स्थानीय सांसद, विधायक, विधान पार्षद पदेन संरक्षक मनोनीत किए गए।

राधेश्याम तिवारी ने किया एकल कविता-पाठ

पटना। कवयित्री डॉ. भावना शेखर के आवास सी-43, अमरावती अपार्टमेंट, बेली रोड, पटना में पिछले दिनो 'सृजन संगति' के तत्वावधान में दिल्ली से पहुंचे कवि राधेश्याम तिवारी का एकल-पाठ तथा पटना के अन्य प्रतिनिधि कवियों के कविता-पाठ का आयोजन किया गया। कार्यक्रम के मुख्य अतिथि डॉ. शिवनारायण थे, अध्यक्ष डॉ. श्रीराम तिवारी। संचालन ऋषीकेश पाठक ने किया। आतिथ्य डॉ. भावना शेखर ने संभाला।

इस अवसर पर दिल्ली से पधारे चर्चित कवि राधेश्याम तिवारी ने अपनी - भाषा में संभव, बिल्ला नम्बर-56, हुसैन जी को नहीं जाना था

'कतर', राजेन्द्र यादव की कुर्सी, छाता, कनस्तर में गंगा, राजघाट में गोडसे, हम लड़ेंगे, दिल्ली में सियार, दिल्ली : उजड़े हुए लोगों का घर, कुत्ते की प्रार्थना, पूँजी का नंगा नाच, तुम कहाँ खड़े हो, तुम्हारे बोलने का मतलब, लोकतंत्र की ऐसी माया, समय के साथ, मुर्दा लोग, नयी सुबह के स्वागत में, फिर किसी ने छेड़ दिया, आदि कविताओं का पाठ किया। उनके अलावा श्रीराम तिवारी, शिवनारायण, भावना शेखर, रानी श्रीवास्तव, शहंशाह आलम, भागवत शरण झा 'अनिमेष', हरींद्र विद्यार्थी, निविड़ शिवपुत्र, ऋषीकेश पाठक, विजय गुँजन, सुजीत वर्मा, रमेश पाठक, राजकुमार प्रेमी, रवीन्द्र कुमार सिन्हा, हृदय नारायण झा, सरोज तिवारी, बाँके बिहारी आदि ने भी अपनी कविताओं का पाठ किया। निविड़ शिवपुत्र ने कवियों, कवयित्रियों, श्रोताओं के प्रति आभार जताया।

समाज का सच उजागर करती हैं पुस्तकें

इलाहाबाद। साहित्यिक संस्था अंजुमन की ओर से यहां हिंदुस्तानी भाषा एकेडमी में आयोजित आयोजित पुस्त्क लोकार्पण समारोह में प्रख्यात आलोचक डॉ.ओम निश्चल ने कहा कि साहित्य हमें जीवन जीने की कला सिखाता है। पुस्तकें न केवल इंसान को आगे बढ़ने का रास्ता दिखाती हैं, बल्कि समाज के सच को भी उजागर करती हैं। समारोह में उपस्थित साहित्यकारों ने अरुण कुमार निगम की चैत को चंदनिया, मनीष ओझा की दिल्ली रिटर्न, वरुण सखा की परलोक में सैटेलाइट, मीनाक्षी सिंह की तुम्हारे लिए, अभिनव अरुण की बादल बंद लिफाफे हैं और मांद से बाहर, गिरिराज भंडारी की पुस्तक पुकारा है हमने उसे बार-बार पुस्तक पर अपने विचार प्रकट किए। कार्यक्रम के दूसरे सत्र में कविताओं का पाठ हुआ, संचालन डॉ.दीपक रुहानी ने किया। कार्यक्रम में कवि यश मालवीय, अरुण निगम, शुभ्रांशु पांडेय आदि की उपस्थिति उल्लेखनीय रही।

'सुभद्रा कुमारी चौहान सम्मान' समारोह एवं प्रकाशनोत्सव : यहां हिन्दुस्तानी भाषा एकेडेमी के सभागार में पिछले दिनो 'गुफ़्तगू साहित्य समारोह-2017' का आयोजन दो सत्रों में किया गया। पहले सत्र में 22 किताबों का विमोचन हुआ। इसके साथ ही नवाब शाहाबादी, इकबाल आजर, अंजली मालवीय, शैलेंद्र कपिल, रमोला रूथ लाल, फरमूद इलाहाबादी, इश्क सुल्तानपुरी, मनमोहन सिंह 'तन्हा', शिबली सना, ऐनुल बरौलवी, राजीव नसीब, अतिया नूर, आभा चंद्रा, डॉ. शैलेष गुप्त 'वीर', सोमनाथ शुक्ला, माहिर मजाल, नरेश महरानी, स्नेहा पांडेय, रुचि श्रीवास्तव, तलत परवीन और शबीहा खातून को 'बेकल उत्साही सम्मान' प्रदान किया गया। इस सत्र की अध्यक्षता प्रो. अली अहमद फातमी ने की । अतिथि के तौर पर अनिल तिवारी, डा. रोहित चौबे, अखिलेश सिंह, सरदार अजीत सिंह, सरदार जसप्रीत सिंह

मौजूद रहे। दूसरे सत्र में महिला विशेषांक का विमोचन किया गया। इस अवसर पर कंचन शर्मा, प्रिया श्रीवास्तव 'दिव्यम्', नुसरत नाहिद, मीनाक्षी, स्वराक्षी स्वरा, प्रीति समकित सुराना, कुमारी स्मृति, शारदा सिंह पायल, नीलोफर फिरदौस, देवयानी, संजू शब्दिता को सुभद्रा कुमारी चौहान सम्मान प्रदान किया गया। इस सत्र की अध्यक्षता डा. यासमीन सुलताना नकवी ने की। पहले सत्र में कवियों का और दूसरे सत्र में कवयित्रियों का काव्य पाठ हुआ। आयोजक इम्तियाज अहमद गाजी ने साहित्यकारों का आभार जताया।

'दर्पन झूठ न बोले' का विमोचन (बदायूँ): यहां पिछले दिनो बदायूँ क्लब में डॉ. रामबहादुर व्यथित की पुस्तक 'दर्पन झूठ न बोले' का विमोचन मुख्य अतिथि, विधायक महेश चंद्र गुप्ता ने किया। कार्यक्रम की अध्यक्षता डॉ. एसके गुप्ता ने की। कार्यक्रम में अनेक कवियों ने अपनी रचनाएं सुनाईं। व्यथित ने पुस्तक के संपादक डॉ. इश्हाक तबीब का सम्मान करते हुए कवि पवन शंखधार, कवि षट्वदन शंखधार, उस्ताद शायर सुरेंद्र नाज आदि के प्रति आभार व्यक्त किया।

पुस्तक लोकार्पण एवं काव्योत्सव

लखनऊ। यहां राजधानी में पिछले दिनो 'हिंदुस्तानी भाषा अकादमी' की ओर से 'पुस्तक लोकार्पण, काव्योत्सव एवं परिचर्चा का आयोजन हुआ। अकादमी के अध्यक्ष सुधाकर पाठक ने अकादमी के उद्देश्यों और कार्यों की की विस्तार से चर्चा की और उपस्थित साहित्यप्रेमियों से अकादमी से जुड़ने की अपील की। समारोह में अकादमी की त्रैमासिक पत्रिका 'हिंदुस्तानी भाषा भारती' के अंक का लोकार्पण भी हुआ ।

अरुणाचल के पूर्व राज्यपाल माताप्रसाद, डॉ.धनेश द्विवेदी, पद्मकांत शर्मा प्रभात, प्रवासी साहित्यकार डॉ. सुरेश शुक्ल, वरिष्ठ पत्रकाए-व्यंगकार अनूप श्रीवास्तव, सेल्स टैक्स कमिश्नर बजरंगी यादव, प्रवीण कुमार सिंह, निवेदिता श्रीवास्तव, संध्या सिंह, कुसुम शुक्ला, साजिदा सबा, अन्नपूर्णा बाजपेई 'अंजु', मीना धर, मधु प्रधान, रश्मि कुलश्रेष्ठ, रंजना जोशी, कुमार तरल, शैलेंद्र संदीप, सरोज शर्मा, सुरेखा शर्मा, सीमा सिंह, बीना राघव, कुमारी वंदना, हमीद खान, अमर आकाश आदि की उपस्थिति उल्लेखनीय रही। कार्यक्रम का संचालन बृजेश द्विवेदी ने किया।

'कविता कलश' का प्रकाशनोत्सव (लखनऊ) : 'चेतना साहित्य परिषद' की ओर से यहां पिछले दिनो उत्तर प्रदेश हिंदी संस्थान के निराला सभागार में नवोदित कवि अशोक शुक्ल अन्जान की प्रथम काव्य कृति "कविता कलश" का लोकार्पण एक सारस्वत समारोह में हुआ। कार्यक्रम की अध्यक्षता डॉ. दाऊजी गुप्त (पूर्व महापौर व अंतर्राष्ट्रीय अध्यक्ष विश्व हिंदी समिति) ने की। मुख्य अतिथि अशोक कुमार पांडेय 'अशोक' (वरिष्ठ छन्दकार एवं सम्पादक ब्रज कुमुदेश) तथा विशिष्ट अतिथि प्रोफेसर ओम प्रकाश गुप्त मधुर प्रसिद्ध साहित्यकार मंचासीन रहे। लोकार्पित कृति पर समीक्षात्मक वक्तव्य के लिए मुख्य वक्ता सुविख्यात कवि प्रमोद द्विवेदी "प्रमोद" मंचासीन थे। चेतना साहित्य परिषद के अध्यक्ष कृष्ण मुरारी विकल भी मंच पर थे। कार्यक्रम का संचालन हरिमोहन वाजपेई "माधव" ने किया। गीतकार डॉ. शिवभजन कमलेश ने सरस्वती वंदना कर कार्यक्रम का शुभारंभ किया। लोकार्पण के बाद अशोक शुक्ल 'अनजान' ने अपनी काव्य यात्रा पर प्रकाश डाला। मुख्य वक्ता प्रमोद द्विवेदी प्रमोद ने पुस्तक पर विचार व्यक्त किए। मुख्य अतिथि वरिष्ठ छन्दकार अशोक कुमार पांडेय 'अशोक', डॉ. दाऊजी गुप्त ने भी पुस्तक की प्रशंसा की। अंत में संस्था के कोषाध्यक्ष रमाशंकर सिंह ने सभी अतिथियों का आभार ज्ञापित किया।

'शब्द मेरे कविता तेरे नाम की' संग्रह का विमोचन : ऑनलाइन गाथा द्वारा प्रकाशित "शब्द मेरे कविता तेरे नाम की" लेखिका वर्षा वर्मा के नवीनतम काव्य संग्रह का विमोचन पिछले दिनो लखनऊ के मोतीमहल लॉन हजरत गंज, में संपन्न हुआ। समारोह में मुख्य अतिथि स्वाती सिंह, विशिष्ट अतिथि सत्या सिंह, महेंद्र भिष्म, हेमंत वर्मा आदि की कार्यक्रम में उपस्थिति उल्लेखनीय रही।

प्रधानमंत्री ने लोकसभा अध्यक्ष की पुस्तक 'मातोश्री' का किया लोकार्पण

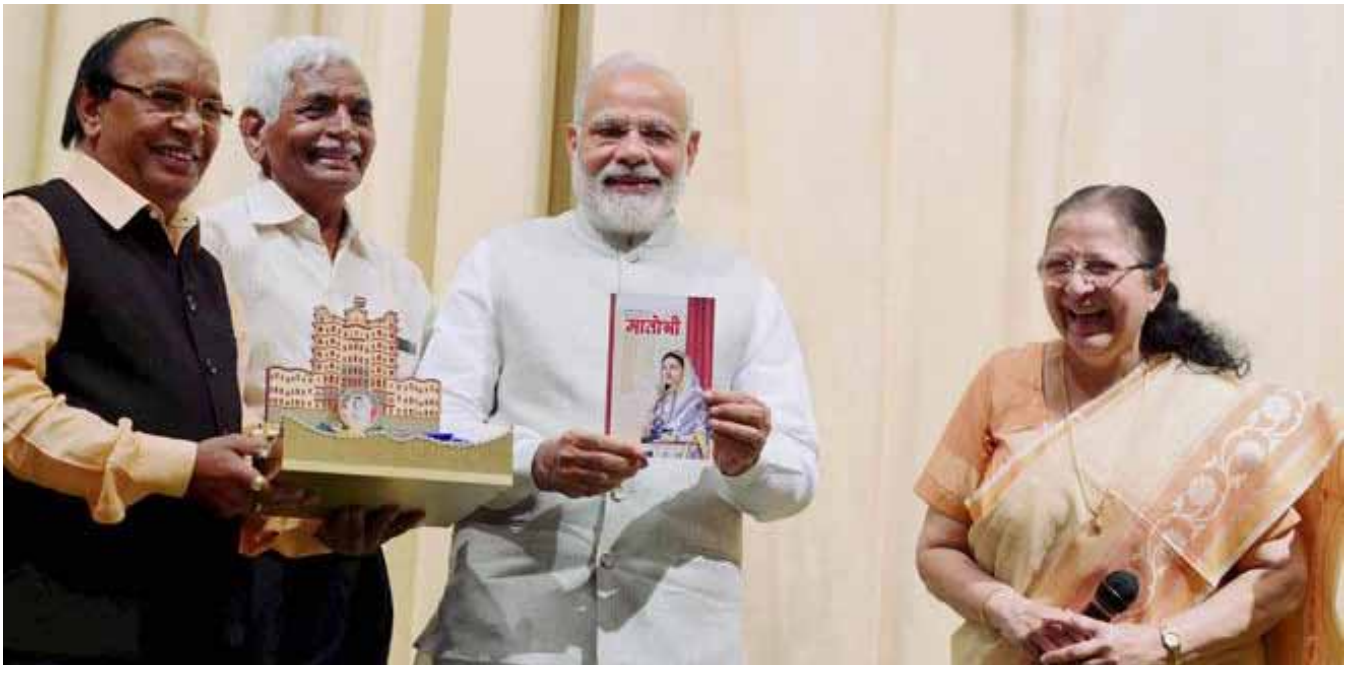

दिल्ली। प्रधानमंत्री नरेंद्र मोदी ने पिछले दिनो लोकसभा अध्यक्ष सुमित्रा महाजन लिखित पुस्तक 'मातोश्री' का लोकार्पण किया। पुस्तक में देवी अहिल्याबाई के जीवन और काल का वर्णन किया गया है। उल्लेखनीय है कि अहिल्याबाई ने 1767 से 1795 के दौरान मालवा क्षेत्र में फैले होल्कर साम्राज्य पर शासन किया था। सुमित्रा महाजन द्वारा लिखित नाटक 'मातोश्री' में रानी अहिल्या बाई होल्कर के जीवन की 15 महत्वपूर्ण घटनाओं को दशार्या गया है।

लोकसभा अध्यक्ष अहिल्या बाई को अपना आदर्श मानती हैं और इनके जीवन पर आधारित कई नाटकों में हिस्सा भी लिया है। विमोचन के बाद लाइब्रेरी बिल्डिंग में ही बालयोगी ऑडोटोरियम में किताब पर आधारित एक नाटक का मंचन किया गया। इस कार्यक्रम में प्रधानमंत्री समेत कई केंद्रीय मंत्री, सांसद तथा अन्य आमंत्रित गणमान्य लोग मौजूद थे।

राष्ट्रीय हिंदी सेवा सम्मान पुरस्कारों की घोषणा

दिल्ली। केंद्रीय हिंदी संस्थान के निदेशक एन.के. पांडे ने पिछले दिनो प्रतिष्ठित हिंदी सेवा सम्मान पुरस्कारों के लिए विभिन्न श्रेणियों से लेखकों के नामों की घोषणा की। मई 2017 में राष्ट्रपति भवन में आयोजित समारोह में राष्ट्रपति प्रणव मुखर्जी पुरस्कार विजेताओं को पुरस्कृत करेंगे। पुरस्कार स्वरूप 5 लाख रुपए, एक उद्धरण और एक शाल प्रदान किया जायेगा। हिंदी भाषा में उनके योगदान के लिए गैर हिंदी भाषी राज्यों से प्रोफेसर एस शेषरत्नम (आंध्र प्रदेश), एम गोविंद राजन (तमिलनाडु), हरेंद्र सिंह बेदी (पंजाब) और एच सुबदानी देवी (मणिपुर) का चयन किया गया है।

अंडरग्राउंड रेलरोड के लिए कोल्सन व्हाइटहेड ने जीता पुलित्जर पुरस्कार : कोल्सन व्हाइटहेड (Colson Whitehead) ने अपने साहित्यिक ब्लॉकबस्टर उपन्यास 'दि अंडरग्राउंड रेलरोड' के लिए कल्पना (Fiction) श्रेणी में पुलित्जर पुरस्कार जीता है. पुलित्जर पुरस्कार को यू.एस.ए. में सबसे प्रतिष्ठित पत्रकारिता और कला पुरस्कार के रूप में माना जाता है. न्यूयॉर्क में कोलंबिया विश्वविद्यालय में इन पुरस्कारों की घोषणा की गई.

हम सा मस्त फकीर कहाँ है सागर भरे जमाने में

दिल्ली। नए और पुराने कवियों की, कवियों के द्वारा और कवियों के लिए रची गई 'सुनो सुनाओ' काव्य गोष्ठी का 48वां आयोजन पिछले दिनो आइपैक्स भवन, आईपी एक्सटेंशन, पटपड़गंज में किया गया। संस्था के प्रधान सुरेश बिंदल के मार्गदर्शन में इस बार भी कार्यक्रम पहले की ही तरह सुचारू रूप से चला और इसमें अपनी-अपनी रचनाओं को सुनाने, साझा करने और अन्य साथी कवियों की रचनाओं को सुनने के लिए रचनाकार हर बार की तरह इकट्ठे हुए।

सबसे युवा कवि दीपक प्रियांश ने अपने मधुर कंठ से एक गीत गाकर गोष्ठी का शुभारम्भ किया। इसके बाद धीरे-धीरे गोष्ठी आगे बढ़ी, बारी-बारी से सब रचनाकारों ने अपना काव्यपाठ किया। कवि सरदार हरमहेन्द्र सिंह ने बुजुर्गों की व्यथा सुनाई - 'जब हम बूढ़े होंगे, बड़ी मुश्किल से बैठे और खड़े होंगे'। नोएडा के प्रेम सागर 'प्रेम' ने अपनी रचना, 'हमसा मस्त फकीर कहाँ है, सागर भरे जमाने में, गम लेकर जो खुशियाँ बाँटे, गाँव नगर वीराने में' पेश की। पीतमपुरा, सरस्वती विहार से आए आमोद कुमार ने अपनी रचना, 'दे सको किसी को कुछ तो, जीने की उमंग देना। स्पन्दन हीन जीवन को, एक सरल तरंग देना' सुनाई।

योगेश पाल ने प्रकृति पर लिखी अपनी कविता 'एक शाम सूखे पेड़ की डाली पर बैठे कुछ परिंदे शेरो-शायरी कर रहे थे...' प्रस्तुत की। वरिष्ठ कवि डॉ. टी.एस. दराल ने अपनी रचना 'भरी जवानी में धर्म-कर्म करने लगे हैं, मियाँ जाने किस जुर्म से डरने लगे हैं।' पेश की। रचनाकार के.के. नरेडा ने दर्द कबीर 'याद रखना सदा कथन मेरा, जो है तेरा वहीं वतन मेरा' सुनाई। विनोद यादव (नंगलइया) ने 'सिर्फ. धरती माँ पे ही तो प्राण धारा बही है, बाकी आकाश मण्डल में कहीं जीवन नहीं...' सुनाई। राज भदौरिया ने 'हवन कुंड में कूद कर दी देह सती ने त्याग। बिन ही कारण मिला है देखो शंकर को बैराग...' रचना प्रस्तुत की। इनके अलावा पुनीता सिंह, 'कुमार' राज आदि ने अपनी रचनाओं का पाठ किया। अंत में सुषमा सिंह ने अपनी रचना सुनाई - 'कैसा है मीत मेरा, ऐ चांद तुम ही मुझे बतला दो, क्या वो भी करता है याद मुझे कुछ तो पता दो।'

'अपनी जमीं अपना आसमां' पर दलित-विमर्श (दिल्ली)। यहां पिछले दिनो युद्धरत आम आदमी तथा ऑल इंडिया ट्राइबल लिटरेरी फोरम की मासिक गोष्ठी (पुस्तक चर्चा) में लेखिका रजनी तिलक की आत्मकथा 'अपनी जमीं अपना आसमां' पर दलित समाज से जुड़े गंभीर और दयनीय समस्याओं को लेकर चर्चा हुई। लेखिका मुख्यतः दलित समाज से है और सामाजिक कार्यकर्ता के रूप में इनकी अपनी पहचान है। इन्होंने अपनी आत्मकथा में परिवार से समाज तक के सफर को बयां किया है। चर्चा में मुख्य रूप से प्रो. हेमलता महिश्वर, डॉ.बजरंग बिहारी तिवारी और संजीव चंदन शामिल हुए। कार्यक्रम की अध्यक्षता हैदराबाद यूनिवर्सिटी इफ्लू के वाईस चांसलर रह चुके अभय मौर्या ने की। कार्यक्रम का संचालन युवा कवि सुशील कुसुमाकर ने किया। गोष्ठी में रमणिका गुप्ता, शेखर पंवार, अजय नावरिया, अजय मिश्रा, पंकज चौधरी, लोकेन्द्र प्रताप, वसीम, सगीर अहमद, अब्दुल हासिम, नीतिशा खलखो, सदानंद वर्मा, विपिन कुमार, दिनेश कुमार, लीलाम्बर सोरेन की उपस्थिति उल्लेखनीय रही।

फैन्स क्लब की कवि-गोष्ठी (दिल्ली): यहां पिछले दिनों कल्ब के तत्वावधान में राकेश गंभीर एवं हरीश तलूजा पटौदी की विशेष उपस्थिति में कवि-गोष्ठी का आयोजन किया गया। गोष्ठी में मुख्य अतिथि गुहावटी की कवयित्री, अभिनेत्री, गजलकारा दीपिका सुतोदिया, कवि नरेश मालिक, ओम प्रकाश प्रजापति, मनीष जैन आदि ने काव्य-पाठ किया।

बहुभाषी कवि-गोष्ठी (दिल्ली) : द फन वैली स्कूल, राजनगर पालम के प्रांगण में सामाजिक संस्था शुभारम्भ फाउंडेशन ने भारतरत्न डॉ भीमराव अंबेडकर का 126 वी जयंती के उपलक्ष में बहुभाषी काव्य एवं विचार गोष्ठी का आयोजन किया। कार्यक्रम का मुख्य उद्देश्य शोषित, वंचित एवं हाशिये पर जी रहे लोगों के अधिकार एवं उनके कर्तव्यों के प्रति सजग होने के लिए प्रेरित करना था। अध्यक्षता साहित्यकार डॉ. अशोक लव ने की। परिचर्चा का आगाज करते हुए संस्था के संस्थापक रामबन्धु तिवारी ने डॉ. भीमराव अंबेडकर के त्रिसूत्र - शिक्षा संगठन एवं संघर्ष पर विशेष प्रकाश डाला। कार्यक्रम में जामिया मिलिया इस्लामिया के हिंदी अधिकारी राजेश कुमार मांझी, मधु त्यागी, वीणा वादिनी चौबे, मुकेश यादव, केशव मोहन पांडेय, जलज कुमार मिश्रा आदि ने अपने विचार व्यक्त किये।

अर्णव कलश मंच की कवि-गोष्ठी (दिल्ली) : अर्णव कलश मंच द्वारा सत्या निकेतन पार्क में "जश्न-ए-बसंत" का आयोजन किया गया। गोष्ठी का आरम्भ सरस्वती वन्दना से किया गया। कवियों ने गजलों, मुक्तकों आदि का सरस पाठ किया। इस अवसर पर कविताओं के बदलते रंग-रूप और समकालीन विषयों पर भी कवियों ने अपने-अपने विचार रखे। गोष्ठी की अध्यक्षता मेहुल लूथरा ने की। गोष्ठी में कवि प्रभात चतुर्वेदी, उजमा, कोमल वत्स, सुनीता भट्ट, राखी, अतुल कुमार यादव आदि मौजूद थे।

अलवर में काव्य-समारोह एवं पुस्तक उत्सव

अलवर (राजस्थान)। नेशनल बुक ट्रस्ट और अलवर जिला प्रशासन की ओर से पिछले दिनो यहां प्रताप ऑडिटॉरियम में पुस्तक उत्सव, कविता उत्सव एवं आर्ट मेले का आयोजन किया गया। इस अवसर पर आयोजित साहित्यिक समारोह में देश अनेक कवियों ने अपनी रचनाओं का पाठ किया, जिनमें डॉ. कुंअर बेचैन, डॉ. दिविक रमेश, विनीत चौहान, नरेश शांडिल्य, नीलोत्पल मृणाल आदि के शब्दों को अपार सराहना मिली।

उल्लेखनीय है कि अलवर में पहली बार नेशनल बुक ट्रस्ट ने यह अनूठा आयोजन किया। इसमें किताबें भी सजीं तो साहित्यिक-सांस्कृतिक संध्या भी आयोजित हुई और आर्ट मेला भी लगा, कैरियर मार्गदर्शन भी हुआ। बच्चों की क्रिएटिव गतिविधियाँ पर वर्कशॉप आयोजित किया गया। आर्ट मेले में बाहर से पधारे जाने-माने कलाकार-चित्रकार फाईन आर्ट्स, ड्राइंग/पेंटिंग, कैलीग्राफी आदि ने कलाओं का प्रशिक्षण दिया। विश्वप्रसिद्ध सूफी बैंड चार यार की सूफी संगीतमय प्रस्तुति एवं कथक नृत्यांगना नलिनी-कमलिनी द्वारा कृष्णमयी मीरा पर बैले प्रस्तुति व कथक प्रस्तुति सराहनीय रही।

पुस्तकालयों में नवाचार पर सेमिनार (जयपुर) : पुस्तक एवं पुस्तकालय संस्कृति के पुरोधा स्व. मास्टर मोतीलाल संघी की 142वीं जयंती एवं विश्व पुस्तक दिवस के अवसर पर श्री सन्मति पुस्तकालय में देश भर के पुस्तकालयाध्यक्षों की उपस्थिति में "पुस्तकालयों में नवाचार" विषय पर सेमिनार का आयोजन किया गया। कार्यक्रम जयपुर लाईब्रेरी एंड इन्फोर्मेशन सोसायटी एवं सन्मति पुस्तकालय के संयुक्त तत्वावधान में आयोजित किया गया। सन्मति पुस्तकालय, प्रबंध समिति के अध्यक्ष विवेक काला के अनुसार समारोह के मुख्य अतिथि डॉ आर एल रैना वाइस चांसलर, जे लक्ष्मीपत विश्वविद्यालय, जयपुर थे। कार्यक्रम की अध्यक्षता राजस्थान युनिवर्सिटी लाइब्रेरी के पूर्व निदेशक डॉ पी के गुप्ता ने की। इस अवसर पर डॉ. एसपी सूद को श्रेष्ठ पुस्तकालयाध्यक्ष एवं श्रीमती लता सुरेश को वर्ष 2017 के मास्टर मोतीलाल संघी युवा पुस्तकालयाध्यक्ष सम्मान से सम्मानित किया गया। राजस्थान विश्वविद्यालय के वर्ष 2016 की बी.लीब.आई.एस.सी. एवं एम.लीब.आई.एस.सी. की परीक्षा में सर्वाधिक अंक प्राप्त करने वाले चार छात्रों को मास्टर मोतीलाल संघी मेमोरियल गोल्ड मेडल प्रदान किया गया। पुस्तक विमोचन (श्रीगंगानगर) : रतन रिसोर्ट भवन में यहां पिछले दिनो पूर्व मंत्री देवीसिंह भाटी की पुस्तक का विमोचन किया गया। समारोह में मुख्य अतिथि के रूप में सांसद निहालचंद मेघवाल थे। कार्यक्रम की अध्यक्षता विधायक गुरुजन्ट सिंह ने की। इनके अलावा विधायक कामिनी जिंदल, जिला प्रमुख प्रियंका श्योराण, यूआईटी चेयरमैन संजय महिपाल, भाजपा जिलाध्यक्ष हरिसिंह कामरा आदि विशिष्ट अतिथि रहे।

दौसा में कवि-गोष्ठी (राजस्थान) : देवनगरी दौसा में पिछले दिनो मासिक कविगोष्ठी का आयोजन किया गया। अध्यरक्षता कवि रविन्द्रे चतुर्वेदी ने की। कार्यक्रम के मुख्यि अतिथि बीकानेर के युवा शाइर कासिम बीकानेरी थे। अमित राज अमित की लघुकथा संग्रह 'मुंह दिखाई' का विमोचन किया गया। लघुकथा संग्रह की भूमिका विमला भण्डीरी ने लिखी है। गोष्ठीख में एक दर्जन से अधिक कवि-साहित्यरकारों ने रचनाएं सुनाईं।

गढ़वाली गोष्ठी में जगमोहन सिंह बिष्ट का सम्मान

उत्तराखंड। पिछले दिनो गढ़वाली कवि-गोष्ठी का आयोजन किया गया। इस अवसर पर वरिष्ठ कवि गजलकार जगमोहन सिंह बिष्ट को सम्मानित किया गया। संचालन कवि नीरज बावडी ने किया। कवि-व्यंगकार सुनील थपल्याल घंजीर व कवि सुरेन्द्र सिंह रावत ने काव्य पाठ किया। जगमोहन सिंह बिष्ट ने अपनी गजल के माध्यम से श्रोताओं को गढ़वाल की हसीन वादियों की सैर कराई।

शब्द-श्रद्धांजलि

साहित्यकार डॉ. राजकुमार शर्मा को श्रद्धांजलि

मुरादाबाद (उ.प्र.)। साहित्यिक संस्था 'अक्षरा' के तत्वावधान में सुप्रसिद्ध नवगीतकार डॉ. माहेश्वर तिवारी के नवीन नगर स्थित आवास पर श्रद्धांजलि-सभा आयोजित की गई, जिसमें शाहजहाँपुर के वरिष्ठ साहित्यकार डॉ. राजकुमार शर्मा के आकस्मिक निधन पर उन्हें विनम्र श्रद्धांजलि अर्पित की गई।

इस अवसर पर डॉ. तिवारी, हास्य-व्यंग्य कवि डॉ. मक्खन मुरादाबादी, गीतकार डॉ. अजय 'अनुपम', गजलकार डॉ कृष्ण कुमार 'नाज', गीतकवि आनंद कुमार 'गौरव', संगीतज्ञा बालसुन्दरी तिवारी, कवयित्री डॉ पूनम बंसल, कवि समीर तिवारी, कवि योगेन्द्र वर्मा 'व्योम', सुमित सिंह 'सुमित' आदि उपस्थित रहे।

डॉ.मिथिलेश कुमारी को श्रद्धांजलि (हरदोई, उ.प्र.)। हिन्दी-संस्कृत की प्रख्यात साहित्यकार डॉ. मिथिलेश कुमारी मिश्र का पिछले दिनो पटना में निधन हो गया। वह बिहार राष्ट्रभाषा परिषद की पूर्व निदेशक थीं और परिषद की पत्रिका की सम्पादक भी रहीं। हरदोई में दिवंगत साहित्यकार को नगर की कई साहित्यिक, शैक्षणिक, सामाजिक, सांस्कृतिक संस्थाओं सरस्वती सदन, आप और हम चेतना मंच, संयुक्त ब्राह्मण महासभा, रफी अहमद किदवई इंटर कॉलेज, प्रतिबिम्ब परिवार, अंतर्ध्वनि परिवार आदि संस्थाओं के अलावा अरुणेश बाजपेई, अखिलेश बाजपेई, बीडी शुक्ला, गिरीश चंद्र बाजपेई, सुखसागर मिश्र "मधुर", कमलेश पाठक, आलोक श्रीवास्तव, अनिल श्रीवास्तव, कुलदीप द्विवेदी, पारुल दीक्षित आदि ने श्रद्धांजलि अर्पित की।

सामाजिक संगठन 'होली', पणजी के तत्वावधान में एवं डॉ. जयसिंह आर्य की अध्यक्षता में कवि सम्मेलन का आयोजन किया गया। मुख्य अतिथि पणजी, गोवा के विधायक सिद्धार्थ कुलविनकर ने सभी आमन्त्रित कवियों, कवयित्रियों का अभिनंदन शाल, श्रीफल, गुलदस्ता व प्रतीक चिन्ह भेंट कर किया।

साहित्य संगम संस्थान कर रहा है 'साहित्यमेध'

साहित्य संगम संस्थान पंजीकरण संख्या १०४२ वाट्स एप समूह हिन्दी साहित्य में नित्य नये कीर्ति मान स्थापित कर रहा है । *एक पृष्ठ मेरा भी* साहित्य संगम के रचनाकारों के लिए एक मील का पत्थर साबित हुआ, जिसमें ३४ नवल व स्थापित साहित्यकारों की रचनाएँ प्रकाशित कर २८ दिसम्बर २०१६ को दिल्ली में अंर्राष्ट्रीय आर्य महासम्मेलन के अवसर पर विमोचन किया गया ।इस पुस्तक का प्रबंध संपादन आ०अरुण श्रीवास्त अर्णव पश्चिम मध्य रेलवे के सतर्कता निरीक्षक महोदय जी ने किया । इस महती उपलब्धि के उपरांत साहित्य संगम संस्थान का पंजीकरण संगम नगरी इलाहाबाद उत्तर प्रदेश में कराया गया ।इसके साथ ही साहित्य संगम के अति उत्साहित पदाधिकारियों एवं सदस्यों के द्वारा *सबेरा ई पत्रिका* , *ई-छन्द शास्त्र* का प्रणयन और ग्वालियर में भव्य विमोचन हुआ । जिसकी कवरेज स्थानीय पाँच-पाँच समाचार पत्रों ने ली ।ई छंदशास्त्र का प्रबंध संपादन आ०अभिषेक औदीच्य जेटीओ बीएसएनएल दिल्ली ने किया ।वे अभी संस्थान की वेबसाइट और ऐप बनाने का कार्य कर रहे हैं ।

इस समय साहित्य संगम संस्थान में डेढ़ मासीय पंजीयन महोत्सव आयोजित किया गया है। जिसमें लगभग पच्चीस ई पुस्तकों का विमोचन किया जाएगा । चार *साहित्यमेध* रचनाकार ई पुस्तकों का विमोचन किया जा चुका है । इन *साहित्यमेध* ई पुस्तकों का प्रबंध संपादन यूको बैंक नागपुर के सहायक प्रबंधक कविराज तरुण ने किया है ।साहित्य संगम के द्वारा हिन्दी साहित्य को पुष्ट बनाने के लिए व्याकरण शाला ,छन्द के विभिन्न विधान के परिमार्जन के लिये छन्दशाला का संचालन वरिष्ठ साहित्यकारों/गुरुओं के द्वारा किया जा रहा है ।

गिरीश पंकज, डॉ. सुधीर शर्मा एवं संतोष श्रीवास्तव का सम्मान

रायपुर (छत्तीसगढ़)। विश्व मैत्री मंच की छत्तीसगढ़ इकाई की ओर से आयोजित वार्षिक समारोह पिछले दिनो समारोह पूर्वक संपन्न हुआ। नगर के प्रमुख कवियों की उपस्थिति में वरिष्ठ व्यंग्यकार, सद्भावना दर्पण (त्रैमासिक पत्रिका) के संपादक गिरीश पंकज, वरिष्ठ लेखक छत्तीसगढ़ मित्र (त्रैमासिक पत्रिका) के संपादक डॉ. सुधीर शर्मा एवं वरिष्ठ लेखिका संतोष श्रीवास्तव को शॉल, स्मृति चिन्ह देकर सम्मानित किया गया। छत्तीसगढ़ में विश्व मैत्री मंच का परचम लहराने, संस्था के प्रति प्रतिबद्ध रहने और अपनी कर्मठता से संस्था को समृद्ध करने के लिए डॉ. मंजुला श्रीवास्तव एवं रुपेंद्र राज तिवारी को भी सम्मानित किया गया। सम्मान के बाद विभिन्न कवियों ने

कविताएं, व्यंग्य आदि सुनाये। श्रोताओं की वाहवाही से सभागार गूंजता रहा। संचालन संस्था के समूह की सह एडमिन रुपेंद्र राज तिवारी तथा सीमा श्रीवास्तव ने किया। आभार वक्तव्य विश्व मैत्री मंच की क्षेत्रीय अध्यक्ष डॉ. मंजुला श्रीवास्तव ने दिया।

समीक्षित कृति : तो गलत क्या है (गजल संग्रह)
गजलकार : अनिरुद्ध सिन्हा, मूल्य-150/-
प्रकाशक : मीनाक्षी प्रकाशन,एमबी-32/2- बी, शकरपुर ,दिल्ली 92
समीक्षक : जहीर कुरैशी (108, त्रिलोचन टावर, संगम सिनेमा के सामने, गुरुबक्स की तलैया
जीपीओ, भोपाल -462001. मोबाइल : 09425790565)

पहली ही नजर में आकर्षित करने वाली शायरी

मेरे कलाम के अक्षर संभाल कर रखना

जहीर कुरैशी

गजलकार अनिरुद्ध सिन्हा की ख्याति गजलगो से अधिक समकालीन गजल के आलोचक के रूप में है। अब तक,अगर उनके पाँच गजल-संग्रह प्रकाश में आए हैं तो समकालीन गजल के पाँच आलोचना-ग्रन्थों से भी उन्होंने काव्य-जगत को समृद्ध किया है। फिलहाल मेरे हाथों में मीनाक्षी प्रकाशन, दिल्ली से प्रकाशित उनका ताजा गजल-संग्रह ''तो गलत क्या है'' है, जिसमें उनकी 92 गजलें संग्रहीत हैं। बहुत अच्छा लगता है, जब एक परिपक्व और जिम्मेदार शायर की तरह अनिरुद्ध सिन्हा कहते हैं -

मेरे कलाम के अक्षर संभाल कर रखना,
जो मैं मरूँ तो मेरा घर संभाल कर रखना,

गजल को गजल का मिजाज और लहजा देना बहुत कठिन काम है। किसी भी गजलगो में यह हुनर या विशिष्टता बरसों की मेहनत के बाद परिलक्षित होती है। गजलकार अनिरुद्ध सिन्हा एक ऐसे रचनाकार हैं, जो सबसे पहले गजल को गजल के रूप में देखना चाहते हैं। यानी कथ्य के साथ-साथ गजल के इल्मे-अरूज गजल की संकेतिकता, व्यंजना और मेनरिज्म की अधिकतम रक्षा करना चाहते हैं। अधिकांश गजलें हिन्दी-उर्दू की साझा संस्कृति का एक अनुकरणीय उदाहरण मानी जा सकती हैं। अनिरुद्ध सिन्हा अपनी गजलों में परंपरा का दामन थामकर भी, नव्यता के रास्ते पर शऊर के साथ आगे बढ़ते चले जाते हैं। उदाहरण के रूप में जैसे ये कुछेक शेर -

ठूंठ है तो क्या हुआ मत काटिए
इन परिंदों का सहारा जाएगा।

कब तलक बादलों में रहेगा
घुट न जाए कहीं चाँद का दम।

हम दूसरों के सामने बौने बने रहे,
साये हमारे धूप से आगे निकल गए।

प्रेम मनुष्य-मन की वह अनिवर्चनीय खुशबू है, जिसकी अभिव्यक्ति नैसर्गिक है। प्रारंभिक और पारंपरिक तौर पर प्रेम, प्रेम की शिद्दत, प्रेम की तीव्रता में रचे-बसे अनिरुद्ध सिन्हा के कतिपय शेरों का सौंदर्य-बोध देखते ही बनता है, यथा-

महकी हुई बहार में फूलों की राह से।
चूमा है मेरा नाम किसी ने निगाह से।
गए दिनों की मुहब्बत की उस हवेली में,
हमारी याद के जुगनू भी झिलमिलाते हैं।
उजालों की चमक लेकर पुराने खत जहाँ निकले,
कई रंगीन सपनों के वहाँ किस्से अलबम निकल आए।

लेकिन, जैसे ही उनकी गजल नव्यता (जिद्दत) का रास्ता अख़्तियार करती है, अनिरुद्ध सिन्हा आज की जिंदगी की विडंबनाओं, विवशताओं और वेदनाओं से सीधे-सीधे जुड़ जाते हैं। उनके शेर आज के खुदगर्ज आदमी की जटिल मानसिकता को कुछ यूँ अभिव्यक्ति देने लगते हैं-

नफरतों की लौ तो मद्धम है मगर,
सुर्ख हैं भीतर शरारे आज भी।

सच बोलने के नाम पर कंपने लगी जुबां,
अच्छे, भले गवाहों के लहजे बदल गए।

एक पुरानी कहावत है, ''सुनना सब की, करना मन की''। अंततः मनुष्य वही करता है, जिसका निर्णय उसका मन करता है। अनिरुद्ध भी अपने एक शेर में मनुष्य मन की इसी परिणति तक पहुँचते हैं -

हजारों लोग हमको राय तो देते हैं लेकिन
अधिकतर बात हम अपने ही दिल की मानते हैं।

अनिरुद्ध का एक और शेर और ''खामोशी'' तूफान की आहटह्न कहावत के निकट तक पहुंचता है -

कह रही है बला की खामोशी,
फैसला अब कोई नया होगा।

अनिरुद्ध सिन्हा की शायराना दृष्टि वंचितों तक भी जाती है लेकिन, वे वंचितों के मनोविज्ञान को उनके ही यथार्थ के साथ अभिव्यक्त करते हैं -

न आसमां, न सितारों की ख़्वाहिशें उनकी,
जमीं के लोग, जमीं से ही दिल लगाते हैं।

अनिरुद्ध सिन्हा दबे-कुचलों, वंचितों के साथ रहकर उनकी जहनी मदद भी करना चाहते हैं। लेकिन, कई बार थके-हारे लोग अपनी मदद खुद ही करने के इच्छुक होते हैं -

मैं चाह कर भी अँधेरा न दूर कर पाया,
हवा में जोश, दिये में नमी मिली मुझको।

अपने अनेक शेरों में अनिरुद्ध हमारे मुल्क की पतित राजनीति की बात करते हैं लेकिन, चोटों की फसल उगाने से लेकर काटने तक आजकल सियासत जिस प्रकार प्रायोजित भय का माहौल बनाती है, उसपर उनका एक खूबसूरत शेर -

देखकर सहमे हुए फूलों के चेहरे,
तितलियों को कितनी दहशत हो रही है।

आज मीडिया का वर्चस्व बढ़ा है। वो अखबार से चल कर न्यूज चैनल और सोशल मीडिया तक आ गया है। चौबीस घंटे के किस क्षण में घटी कौन-सी खबर आपको अर्श से फर्श पर ला फटके, किसी को पता नहीं। क्योंकि मीडिया किसी का सगा नहीं होता। अनिरुद्ध सिन्हा का ये शेर हमारे दौर के इसी कड़वे सच को बयान करता है -

न दौलत काम आती है, न ओहदा काम आता है,
जहाँ सुर्खी से छप जाते हैं, उनकी रात के किस्से।

कुल मिलाकर, गजलकार अनिरुद्ध सिन्हा का पांचवां गजल-संग्रह ''तो गलत क्या है'' उनको एक बा-शऊर, परिपक्व, पहली ही नजर में आकर्षित करनेवाले शायर के रूप में रेखांकित करता है।

20 मई पुण्यतिथि पर याद आए एक कवि के नाम अनेक - सनेही, त्रिशूल, अलमस्त, लहर-लहरपुरी, तरंगी

है तो यही कविता रस है, नहीं और कहां वसुधा में सुधारस

सनेही जी के बारे में राष्ट्रकवि रामधारी सिंह दिनकर लिखते हैं- 'किताबें तैयार करने की अपेक्षा, कवि तैयार करने की ओर उनका अधिक ध्यान था। किताबें तो उनके शिष्यों ने जबर्दस्ती तैयार कर दीं। सनेही जी अपने पद्यों की मंजूषा बनाने को जरा भी उत्सुक नहीं थे। कवि तैयार करने के लिए सनेही जी अपने पास आने वाले नए रचनाकारों की कविताओं में लगातार संशोधन करते थे। रचना पूरी तरह संपादित कर लेने के बाद उसे सुकवि में प्रकाशित करते थे। इसके साथ ही वह लगातार कानपुर में कवि-गोष्ठियां करते रहते थे।'

नितिन 'सबरंग'

पं. गयाप्रसाद शुक्ल 'सनेही' हिंदी साहित्य के उन आचार्य कवियों में रहे हैं, जिनकी रचना-यात्रा ब्रजभाषा से आरंभ होकर प्राचीन छंद परंपरा को लगभग पचास वर्षों तक अनुप्राणित करती रही। वह सनेही मंडल चलाते थे, जिसमें नए कवियों के विकसित होने का अवसर मिलता था। ब्रजभाषा के सवैया, घनाक्षरी को खड़ी बोली में निखार सनेही मंडल के कवियों से मिला। कविता पर उनके रचनात्मक सरोकार हिंदी साहित्य के इतिहास की महत्वपूर्ण घटना माने जाते हैं। राष्ट्रचेता काव्यधारा का उन्होंने 'त्रिशूल' नाम से नेतृत्व किया। इसी तरह से माखनलाल चतुर्वेदी ने 'एक भारतीय आत्मा' नाम से दूसरी काव्यधारा को प्रवाहित किया था। सनेही जी 'अलमस्त', 'लहर-लहरपुरी', 'तरंगी' आदि नामों से भी रचनाएं करते थे। सनेही मंडल के कवियों को समस्यापूर्ति के माध्यम से भी काव्य-रचना में समर्थ किया जाता था। वह अंतिम पंक्ति दे देते थे, उससे पहले की तीन पंक्तियां कवियों को लिखकर कविता पूरी करनी होती थी।

सनेही जी के बारे में राष्ट्रकवि रामधारी सिंह दिनकर लिखते हैं- 'किताबें तैयार करने की अपेक्षा, कवि तैयार करने की ओर उनका अधिक ध्यान था। किताबें तो उनके शिष्यों ने जबर्दस्ती तैयार कर दीं। सनेही जी अपने पद्यों की मंजूषा बनाने को जरा भी उत्सुक नहीं थे। कवि तैयार करने के लिए सनेही जी अपने पास आने वाले नए रचनाकारों की कविताओं में लगातार संशोधन करते थे। रचना पूरी तरह संपादित कर लेने के बाद उसे सुकवि में प्रकाशित करते थे। इसके साथ ही वह लगातार कानपुर में कवि-गोष्ठियां करते रहते थे।'

अवधी के अनेक विद्वानों ने भारतीय स्वतंत्रता आन्दोलन के दौरान अपने-अपने तरीके से अंग्रेजी शासन के विरूद्ध संघर्ष करने की प्रेरणा दी। ऐसे विद्वानों में गयाप्रसाद शुक्ल 'सनेही' का नाम पहली पंक्ति में लिया जाता है। उन्होंने अपनी काव्य प्रतिभा के माध्यम से राष्ट्रीयता और देशिभक्त का बिगुल फूंकने में कोई कसर नहीं छोड़ी थी। स्वतंत्रता संग्राम के दौरान प्रमुखता से गूंजने वाली यह पंक्तियां उन्हीं की है -

जो भरा नहीं है भावों से बहती जिसमें रसधार नहीं,
वह हृदय नहीं है, पत्थर है, जिसमें स्वदेश का प्यार नहीं।

गया प्रसाद शुक्ल 'सनेही' का जन्म 21 अगस्त, 1883 को हड़हा ग्राम, उन्नाव (उत्तर प्रदेश) में हुआ था। उनके पिता का नाम पं. अवसेरीलाल शुक्ल और माता रुक्मिणी देवी थीं। सनेही जी जब केवल पाँच वर्ष के थे, पिता का साया उनके सिर से उठ गया था। वर्ष 1899 में वह अपने गांव से आठ मील दूर बरहर नामक गांव के प्राइमरी स्कूल के अध्यापक नियुक्त हुए। वर्ष 1921 में गांधीजी के आंदोलन प्रभावित होकर टाउन स्कूल की हेडमास्टरी से उन्होंने त्यागपत्र दे दिया। उसी वर्ष मुंशी प्रेमचंद ने भी सरकारी नौकरी ठुकरा दी थी। सनेहीजी की प्रमुख कृतियां हैं - प्रेमपचीसी, गप्पाष्टक, कुसुमांजलि, कृषक-क्रन्दन, त्रिशूल तरंग, राष्ट्रीय मंत्र, संजीवनी, राष्ट्रीय वीणा (द्वितीय भाग), कलामे-त्रिशूल, करुणा-कादिम्बनी और सनेही रचनावली। 20 मई 1972 को उनका निधन हो गया था।

अपने बारे में सनेही जी स्वयं लिखते हैं- 'मेरा जन्म आधुनिक हिंदी के निर्माण में हुआ। भाषा में निखार आ रहा था, गद्य का विकास हो रहा था। पद्य की भाषा में एकरूपता का अभाव था, वह आंचिलकता के प्रभाव से त्रस्त थी। उसके नाना रूप थे। अवधी, बैसवारी, पूरबी, बिहारी, मैथिली, बुंदेलखंडी, राजस्थानी आदि-आदि। फिर भी ब्रजभाषा पर पद्य का अखंड साम्राज्य था। उस समय के बड़े-बड़े कवियों का ऐसा मत था कि काव्य के लिए एकमात्र ब्रजभाषा ही उपयुक्त है। उसके माधुर्य और लोच पर कविगण लुब्ध थे किंतु साथ ही गद्य की भाषा के अनुरूप पद्य की भाषा के निरूपण में सुकृति सत्कवि संलग्न थे। यह नवीन परिवर्तन खड़ी बोली के नाम से जाना जाता था।

'इस संबंध में पंडित महावीर प्रसाद द्विवेदी का अथक श्रम और प्रयत्न श्लाघनीय है, जिन्होंने गद्य-पद्य रचना के लिए योग्य व्यक्तियों को प्रेरित, प्रोत्साहित किया। उस समय उर्दू सरकारी भाषा थी। ...मैंने मौलवी हामिद अली से फारसी का अध्ययन किया। साथ ही अपने ही ग्राम के लाला गिरधारी लाल से काव्य-रीति का विधिवत अध्ययन किया। लाला जी ब्रजभाषा के सुकवि थे। साथ ही हिंदी, उर्दू, फारसी के ज्ञाता भी थे। मैं ब्रजभाषा के आचार्य भिखारीदास 'दास' के इस मत से सर्वथा सहमत रहा हूं कि -

शिक्त कवित्त बनाइबे की, जेहिं जन्म नछत्र मैं दीनीं विधातें,
काव्य की रीति सिखै सुकवीन सों, देखै-सुनै बहु लोक की बातें,
'दास' जू जामें यकत्र ये तीन, बनै कविता मनरोचक तातें,
एक बिना न चलै रथ जैसे, धुरंधर-सूत कि चक्र निपातैं।

'काव्य में मेरी बाल्यकाल से यही अनुरिक्त रही है।... मैंने किसी दूसरी आकांक्षा को कभी प्रश्रय नहीं दिया। मेरी धारणा है कि -

सागर-मंथन से निकला अमी पी गए देव, न बूंद बचा बस,
वासुकी वास पताल में है, सुधा-धाम शशांक को चाय गये शश,
जीवनदायक कोई नहीं, यहां खोज के देखिए आप दिशा दस,
है तो यही कविता रस है, नहीं और कहां वसुधा में सुधारस।'

दिन अच्छे आने वाले हैं

जब दुख पर दुख हों झेल रहे, बैरी हों पापड बेल रहे,
हों दिन ज्यों-त्यों कर ढेल रहे, बाकी न किसी से मेल रहे,
तो अपने जी में यह समझो, दिन अच्छे आने वाले हैं।
जब पडा विपद का डेरा हो, दुर्घटनाओं ने घेरा हो,
काली निशि हो, न सबेरा हो, उर में दुख-दैन्य बसेरा हो,
तो अपने जी में यह समझो, दिन अच्छे आने वाले हैं।
जब मन रह-रह घबराता हो, क्षण भर भी शान्ति न पाता हो,
हरदम दम घुटता जाता हो, जुड रहा मृत्यु से नाता हो,
तो अपने जी में यह समझो, दिन अच्छे आने वाले हैं।
जब निन्दक निन्दा करते हों, द्वेषी कुढ़-कुढ़ कर मरते हों,
साथी मन-ही-मन डरते हों, परजिन हो रुष्ट बिफरते हों,
तो अपने जी में यह समझो, दिन अच्छे आने वाले हैं।
बीतती रात दिन आता है, यों ही दुख-सुख का नाता है,
सब समय एक-सा जाता है, जब दुर्दिन तुम्हें सताता है,
तो अपने जी में यह समझो, दिन अच्छे आने वाले हैं।

मज़दूर

जगत के केवल हम कर्त्तार, हमीं पर अविलम्बत संसार ।
कला-कौशल-खेती-व्यापार, हवाई यान, रेल या तार ।
सभी के एकमात्र आधार, हमारे बिना नहीं उद्धार ।।
रत्नगर्भा से लेकर रत्न, विश्व को बीहड़ वन सयत्न ।
काटकर बीहड़ वन अभिराम, लगाए रम्य-रम्य आराम ।
झोंपड़ी हो या कोई महल, हमारे बिना न बनना सहल ।।
जगत के केवल हम कर्त्तार, हमीं पर अविलम्बत संसार ।।
किसी का लिया नहीं आभार, बाहुबल रहा सदा आधार ।
पूर्ण हम संसृति के अवतार, हमारे हाथों बेड़ा पार ।।
उठाया है हमने भू-भार, हुआ हमसे सुखमय संसार ।
जगत के केवल हम कर्त्तार, हमीं पर अविलम्बत संसार ।।
हाय ! उसका यह प्रत्युपकार, तुच्छ हमको समझे संसार ।
बन गए कितने ठेकेदार, भोगने को समपित्त अपार ।।
हमारा दारून हा-हाकार, उन्हें हैं वीणा की झनकार ।
जगत के केवल हम कर्त्तार, हमीं पर अविलम्बत संसार ।।
भाग्य का हमें भरोसा दिया, विभव सब अपने वश में किया ।
जहाँ तक बना रक्त पर लिया, वज्र की छाती, पत्थर हिया ।
किसी ने ज़ख्मेदिल कब सिया, जिया दिल अपना पर क्या जिया ।
जगत के केवल हम कर्त्तार, हमीं पर अविलम्बत संसार ।।
दिया था जिनको अपना रक्त, प्राण के प्यासे वे बन गए ।
नम्रता पर थे हम आसक्त, और भी हमसे वे तन गए ।।
बहुत सह डाले हैं सन्ताप, गर्दनें काटीं अपने-आप ।
न जाने था किसका अभिशाप, न जाने किन कृत्यों का पाप ।।
हो रही थीं आँखें जो बन्द, पद-दलित होने को सानन्द ।
जगत के केवल हम कर्त्तार, हमीं पर अविलम्बत संसार ।।
रचेंगे हम अब नव संसार, न होने देंगे अत्याचार ।
प्रकृति ही का लेकर आधार, चलाएँगे सारे व्यवहार ।।
सिद्ध कर देंगे बारम्बार, और देखेगा विश्व अपार ।
जगत के केवल हम कर्त्तार, हमीं पर अविलम्बत संसार ।।

किसान

मानापमान का नहीं ध्यान, बकते हैं उनको बदज़ुबान,
कारिन्दे कलि के कूचवान, दौड़ाते, देते दुख महान,
चुप रहते, सहते हैं किसान ।।
नजराने देते पेट काट, कारिन्दे लेते लहू चाट,
दरबार बीच कह चुके लाट, पर ठोंक-ठोंक अपना लिलाट,
रोते दुखड़ा अब भी किसान ।।
कितने ही बेढब सूदखोर, लेते हैं हड्डी तक चिंचोर,
है मनत्रिसद्ध मानो अघोर, निर्दय, निर्गुण, निर्मम, कठोर,
है जिनके हाथों में किसान ।।
जब तक कट मरकर हो न ढेर, कच्चा-पक्का खा रहे सेर,
आ गया दिनों का वही फेर, बँट गया न इसमें लगी देर,
अब खाएँ किसे किहए किसान ।।
कुछ माँग ले गए भाँड़, भाँट कुछ शहना लहना हो निपाट,
कुछ ज़िलेदार ने लिया डाट, हैं बन्द दयानिधि के कपाट,
किसके आगे रोएँ किसान ।।
है निपट निरक्षर बाल-भाव, चुप रहने का है बड़ा चाव,
पद-पद पर टकरा रही नाव, है कर्णधार ही का अभाव,
आशावश जीते हैं किसान ।।
अब गोधन की वहाँ कहाँ भीर, दो डाँगर हैं जर्जर शरीर,
घण्टों में पहुँचे खेत तीर, पद-पद पर होती कठिन पीर,
हैं बरद यही भिक्षुक किसान ।।
फिर भी सह-सहकर घोर ताप, दिन रात परिश्रम कर अमाप,
देते सब कुछ, देते न शाप, मुँह बाँधे रहते हाय आप,
दुखियारे हैं प्यारे किसान ।।
जितने हैं व्योहर ज़मींदार, उनके पेटों का नहीं पार,
भस्मागि रोग का है प्रचार, जो कुछ पाएँ, जाएँ डकार,
उनके चर्वण से हैं किसान ।।
इनकी सुध लेगा कौन हाय, ये खुद भी तो हैं मौन हाय,
हों कहाँ राधिकारौन हाय ? क्यों बन्द किए हैं श्रोन हाय ?
गोपाल ! गुड़ गए हैं किसान ।।
उद्धार भरत-भू का विचार, जो फैलाते हैं सिद्वचार,
उनसे मेरी इतनी पुकार, पिहले कृषकों को करें पार,
अब बीच धार में हैं किसान ।।

पत्रालय

साहित्यिक पत्रिकारिता में यह 'नया अवतार' : गिरीश पंकज

रायपुर (छत्तीसगढ़) से जाने-माने व्यंग्यकार एवं कवि गिरीश पंकज लिखते हैं- 'अभी सरसरी तौर पर पत्रिका देखी। सच कहूँ, कविता पर केंद्रित ऐसी पत्रिका हिंदी में अब तक नहीं निकली। यह बिलकुल अभिनव पहल है। हिंदी और उर्दू दोनों का साथ लेकर चलने वाली यह पत्रिका रचनाकारों को जिस तरीके से प्रस्तुत कर रही है, वह अभूतपूर्व है। मेरी हार्दिक शुभकामना है कि पत्रिका दीर्घजीवी हो। मैं तो 20 वर्षों से श्वेत-श्याम पत्रिका अनुवाद पत्रिका निकाल रहा हूँ। सीमित प्रसार संख्या है। मूल काम लिखना ही है लेकिन 'क्या कर रहे हो', जैसे सवालों का उत्तर देने के लिए पत्रिका भी निकाल रहा हूँ। मुझे खुशी हुई कि साहित्यिक पत्रिकारिता की दुनिया में 'कविकुम्भ' जैसे एक नया अवतार है। दिल को छू गयी।'

आंचलिक कवियों के लिए 'कविकुम्भ' एक नई संभावना :डॉ. चंद्रकुमार वरठे

जयपुर (राजस्थान) से दिल्ली दूरदर्शन के पूर्व निदेशक डॉ. चंद्रकुमार वरठे लिखते हैं - 'कविकुम्भ साहित्य के उन दुखदाई स्थितियों पर नजर डाली है, जो आम चचाओं के बावजूद अन्य पत्र-पत्रिकाओं में ओझल-सी रहती हैं। खासकर कविता के मंचीय हालात पर इसमें प्रकाशित विद्वानों के विचार नई पीढ़ी को लुगदी सृजन से सजग करेंगे और उनको भी आगाह करेंगे, जो मंचों पर अभिनय के बूते कचरा फैला रहे हैं। दुखद है कि इससे सम्मानित कवियों का मंच-संवाद हाशिये पर रह गया है। पत्रिका का एक और प्रयास अनूठा लगा कि उसने आंचलिक बोल-भाषा को भी अपनी परिधि में लिया है। इससे हिंदी की आंचलिक भाषाओं के कवियों को व्यापक उपस्थिति का एक सशक्त नया माध्यम मिला है। एक सुझाव देना चाहूंगा कि साहित्य की पत्रिका में रंग की अनदेखी भी कर सकते हैं। पत्रिका में साहित्य के उन हालात को भी प्रकाशित किया जाना चाहिए, जो सरकारी-गैरसरकारी प्रपंचों के कारण चर्चा में नहीं आने दिए जा रहे हैं। पत्रिका का मार्च अंक अत्यंत सुपाठ्य लगा। बधाई।'

माहेश्वर तिवारी समकालीन कविता के महत्वपूर्ण कवि : कृष्ण बक्षी

विदिशा (मध्य प्रदेश) से सुपरिचित नवगीतकार कृष्ण बक्षी लिखते हैं - 'साहित्यिक मासिक पत्रिका कविकुंभ का मार्च अंक देखा। बहुत बढ़िया। माहेश्वर तिवारी जी का इसमें होना बहुत महत्वपूर्ण है। वह समकालीन कविता के लोकप्रिय वरिष्ठ कवि हैं। राजस्थान से वरिष्ठ कवि नवल जोशी लिखते हैं - 'लगातार हाशिये पर जा रहे काव्य साहित्य को पुनर्प्रतिष्ठापित करने की दिशा में बहुत अच्छी शुरूआत की है आपने।' कवि कृष्णकांत दुबे लिखते हैं- 'कवि रामकुमार कृषक से की गयी बातचीत बहुत ही उपयोगी व सार्थक है। देश के प्रतिष्ठित रचनाकारों से कविकुंभ को खूब सजाया गया है।' सायर चौधरी लिखते हैं- 'अंधेरे में एक ही दिया काफी होता है, जो कविकुंभ है।'

साहित्य के संरक्षण का आह्वान कर रही है पत्रिका : कीर्ति अग्रवाल

गोंदिया (महाराष्ट्र) की युवा कवयित्री कीर्ति अग्रवाल लिखती हैं - 'मार्च अंक पढ़कर लगा कि 'कवि कुंभ' पत्रिका साहित्य के संरक्षण का आह्वान कर रही है। बहुत जरूरी है कि इसका हिंदी के

गंभीर साहित्यकारों की ओर से भी खुलकर स्वागत किया जाना चाहिए। पत्रिका का मार्च अंक पढ़कर मैं अभिभूत हूं। ऐसी पत्रिकाएं अब पढ़ने को नहीं मिलती हैं। इसमें सिर्फ साहित्य ही नहीं, असाहित्यिक सरोकारों की स्थितियों से परिचित होने का भी अवसर मिला। खास कर बड़े साहित्यकारों की टिप्पणियों ने कई तरह की स्थितियों से सुपरिचित कराया। यह पत्रिका हम जैसे नौसिखियों के लिए एक बड़े ज्योति-स्तंभ जैसी है। पत्रिका परिवार को मेरी शुभकामनाएं।'

माहेश्वर तिवारी, नचिकेता, अश्वघोष की चिंताएं गौरतलब : प्रेमनाथ मिश्र

गोरखपुर (उत्तर प्रदेश) से प्रेमनाथ मिश्रा लिखते हैं - 'कविकुंभ का मार्च 17 अंक पढ़ा। साहित्य के प्रति संवेदनशीलता और हिंदी साहित्य में पनप रहे कुसंस्कारों के प्रति लेखकों की चिंता ने मझे बहुत प्रभावित किया। खासतौर से वरिष्ठ कवि माहेश्वर तिवारी, अश्वघोष के साक्षात्कार। हिंदी साहित्य में स्थापित सी होती जा रही मंचीय अपसंस्कृति के प्रति उनकी चिंताएं हमे बहुत कुछ सोचने को मजबूर करती हैं। कवि नचिकेता के आलेख ने हिंदी कविता के यथार्थ को उद्घाटित किया है। शैलेन्द्र शर्मा का गीत 'बाहों भर दूरी' और बुद्धिनाथ मिश्र का गीत 'लौट आओ' ने दिल को छू लिया। आलोक श्रीवास्तव की रचना 'सखी पिया को जो मैं न देखूँ' ने अमीर खुसरो की याद दिला दी। यदि कविकुंभ का स्तर इसी प्रकार बना रहता है तो निश्चित ही साहित्यिक पत्रिकाओं में यह मील का पत्थर साबित होगी।'

कवि डॉ. सागर का संघर्ष रंग लाया

ख्वाबों को सच करने के लिए तितलियों ने सारे रंग बेच दिए

बलिया (उत्तर प्रदेश) के एक छोटी-सी घर-गृस्थी वाले गांव ककरी में परिवार की माली हालत से जूझते हुए सागर एक दिन देहात की सरहद पारकर बीएचयू, जेएनयू होते पहुंच गए मुंबई। गीत लिखने का उन पर ऐसा जुनून सवार था कि घरवालों से बगावत कर बॉलीवुड का रास्ता चुना। वहां भी संघर्ष के दिनों ने काफी वक्त तक पीछा नहीं छोड़ा। वह बताते हैं, कई बार ऐसे भी समय का सामना करना पड़ा, जब लोकल ट्रेन से दूर कहीं के लिए बाहर निकलने के बाद वहां से लौटने के लिए उनके पास ऑटो का किराया तक नहीं होता था। किराया दे दें तो खाना कैसे खाएंगे। अक्सर ऑटो किराया देकर भूखे पेट सो जाते लेकिन एक दिन संघर्ष रंग लाया, जब श्रेया घोषाल ने उनका लिखा गीत गुनगुनाया - 'खयालों में यादों की जो धूप उतरती है'....

उत्तर प्रदेश के जिला बलिया से पचास किलो मीटर दूर एक छोटे से गांव ककरी के रहने वाले डॉ. सागर के लिखे गीतों पर इन दिनों बॉलीवुड झूम रहा है। एक गरीब किसान परिवार में पैदा होने वाले सागर बचपन से ही जिद्दी धुन के मालिक थे। जैसे-तैसे परिवार ने पढ़ाई-लिखाई करवाई और सोचा कि बेटा पीएचडी करके मास्टर बन जाएगा तो घर का गुजारा जरा ठीक होने लगेगा लेकिन सागर के मन पर गीत लिखने का जुनून इस हद तक तारी था कि उन्होंने घरवालों से बगावत कर बॉलीवुड का रास्ता चुना। कामयाबी मिली तो परिवार समेत पूरा गांव नाच उठा। आज जब वह अपने गांव जाते हैं तो आसपास के दर्जनों गांव उनके स्वागत में ककरी में महफिल जमाने लगते हैं।

वह बताते हैं कि ' मैं उस वक्त दूसरी क्लास में था। सातवीं क्लास में मैंने लोकगीत लिखने शुरू कर दिए, बीएचयू आने तक तो कविता लिखने का ऐसा सिलिसला शुरू हुआ कि आज तक नहीं थमा।' सागर न केवल गीत-कविता बल्कि बिरहा, सोहर, कजरी, होली और झूमर भी लिखते हैं। उनके गीतों में दहेज प्रथा, बाल विवाह और नारी प्रतिरोध विषय होते हैं। वर्ष 2010 में सागर जवाहर लाल नेहरू विश्वविद्यालय से अपनी पीएचडी की डिग्री लेकर मुंबई चले गए थे।

वह बताते हैं 'मैंने मुंबई में संघर्ष के दिनों में ऐसा वक्त भी देखा है कि एक ओर लोकल ट्रेन से जाने के बाद वहां से लौटने के लिए मेरे पास ऑटो का किराया नहीं होता था। मात्र इतने रुपये जेब में होते थे कि मैं या तो ऑटो से घर आ सकूं या खाना सकूं लेकिन मुंबई की तेज बारिश में मैं ऑटो से घर आ जाता था और बिना खाना खाए सो जाता था।' फिर जेएनयू के एक दोस्त के जरिये सागर को फिल्म 'यह स्टूपिड प्यार' में टाइटिल गीत लिखने का काम मिला। वहां से सिलिसला शुरू हुआ तो सागर ने फिर पीछे मुड़कर नहीं देखा। श्रेया घोषाल ने उनका लिखा गीत 'खयालों में यादों की जो धूप उतरती है....' गाया। 'लव यू सोनिया' के दो गीत लिखे, हाल ही में सागर का लिखा एक गीत काफी चर्चित हुआ है 'ख्वाबों को सच करने के लिए तितलियों ने सारे रंग बेच दिए।'

सागर ने हमेशा से चाहा कि वह अपने गीतों के जरिये अपने परिवार की सेवा कर सकें। उनका कहना है 'जब बाबू जी मुझे मुंबई भेजने के लिए नहीं मान रहे थे तो कुछ देर बाद मान गए बोले, इसका फैसला गलत नहीं हो सकता।' और मैंने बाबू जी की बात को सच करके दिखाया। सागर बताते हैं 'नवीं क्लास तक मैं स्कूल नंगे पांव जाता था, मेरे पास चप्पल नहीं थी और बीए में आकर मैंने पहली दफा स्वेटर पहना। बस मैं मुंबई की मुश्किल लें देखकर भागा नहीं, लगता था कि गांव वाले मजाक उड़ाएंगे।' सागर के अनुसार सहनशीलता और हिम्मत कामयाबी की कुंजी है ।

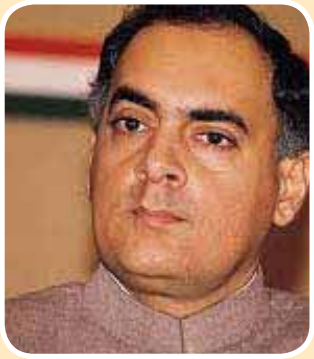

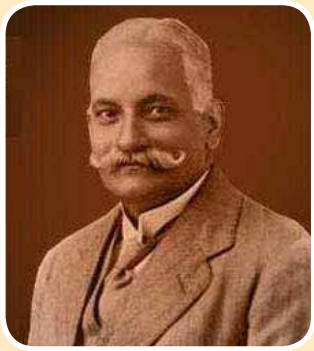

06 मई मोतीलाल नेहरू जयंती, 21 मई राजीव गांधी स्मृति-दिवस
एवं 27 मई जवाहरलाल नेहरू स्मृति-दिवस पर शत-शत नमन

जिनसे बढ़ा देश का मान
अमन-शांति का वह पैगाम
याद रखेगा हिंदुस्तान

जय हिंद **जय भारत**

प्रदीप भट्ट
प्रदेश प्रवक्ता,
उत्तराखंड कांग्रेस

वैवाहिक परिधानों के लिए
बंधन
बब्लू राही, महारानी टॉवर, छपरा (बिहार)

14 मई, मातृ दिवस

ममतामयी माताओं को हार्दिक शुभकामनाएं

माँ कबीर की साखी जैसी,
तुलसी की चौपाई-सी,
माँ मीरा की पदावली-सी,
माँ है ललित रुबाई-सी।

(जगदीश व्योम)

अनामिका सिंह

कवयित्री एवं प्रदेश अध्यक्ष भाजपा महिला मोर्चा बिहार

विश्व मातृ-दिवस पर बीइंग वूमेन की हार्दिक शुभकामनाएं

BEING WOMEN
Be a complete women...

रंजीता सिंह
राष्ट्रीय अध्यक्ष, बीइंग वूमेन